विज्ञान

खोज न्यूट्रीनो कणों की

शहरी मल-जल का उपचार

महान वैज्ञानिक माइकल फैराडे

मछलियाँ जो मछलियाँ नहीं हैं

कहाँ दबे हुये हैं कार्बनडाइऑक्साइड के गोदाम

मानवता के व्यापारी (कविता)

दिसम्बर 1991 अंक

वार्षिक मूल्य : 25 रुपये   प्रति अंक : 2 50 पैसे

विज्ञान परिषद, प्रयाग

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 1913; विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915
दिसम्बर 1991; वर्ष 77 अंक 9

मूल्य

आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत : 500 रु० संस्थागत
त्रिवार्षिक : 60 रु०
वार्षिक : 25 रु०
एक प्रति : 2 रु० 50 पैसे

विज्ञान विस्तार

प्रकाशक
डॉ० हनुमान प्रसाद तिवारी
प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग

सम्पादक
प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

मुद्रक
अरुण राय
प्रसाद मुद्रणालय
7ए, बेली एवेन्यू
इलाहाबाद-211002

सम्पर्क
विज्ञान परिषद्
महर्षि दयानन्द मार्ग
इलाहाबाद-211002

अनाक्सीय विधि द्वारा शहरी मल-जल का उपचार

डॉ० आशुतोष गौतम
विनोद प्रसाद जोशी

भारतवर्ष में प्रयोग होने वाले जल का लगभग 80 प्रतिशत पुनः बिना किसी प्रयोग के प्रदूषित जल के रूप में नदियों, तालाबों, झरनों तथा समुद्र में वापिस आ जाता है। प्रदूषित जल इस प्रकार स्वच्छ जल के भण्डारों को प्रदूषित करने के साथ ही पर्यावरण का संतुलन भी खराब करता है। यही नहीं, यह प्रदूषित जल भूमि के अन्दर पहुँच कर भूमिगत जल स्रोतों को भी प्रदूषित कर देता है।

हमारे देश में उपलब्ध शुद्ध जल का लगभग 70 प्रतिशत भाग प्रदूशित है, जिसका मुख्य कारण मनुष्यों द्वारा त्याज्य मल-जल है

भारतवर्ष में 7-8 प्रतिशत शहरों में पूर्ण या आंशिक रूप से मल-जल को उपचारित करने की सुविधा उपलब्ध है। इन शहरों में हमारे देश की जनसंख्या का एक तिहाई भाग रहता है। अतः इससे स्पष्ट होता है कि यदि हमारे देश में प्रत्येक शहर अथवा कस्बों में मल-जल को उपचारित करने की व्यवस्था शीघ्र न की गई तो हमारे देश में जल-प्रदूषण का संकट गहरा जायेगा।

मल-जल को उपचारित करने की आसन व लाभप्रद विधि अनाक्सीय (Anaerobic) विधि है। इससे हमें ऊर्जा के साथ-साथ खाद भी मिलती है, जो कि कृषि के लिए अत्यन्त उपयोगी होती है।

अनाक्सीय विधि द्वारा उपचार

मल-जल के शुद्धिकरण (विघटन) में आक्सीय विधि द्वारा एक्टीवेटड स्लज तथा फिलम प्राप्त होती है जबकि अनाक्सीय विधि में विघटित स्लज प्राप्त होता है। इन दोनों विघटनों की गति उसमें उपस्थित सूक्ष्मजीवों की संख्या पर निर्भर करती है। साथ ही साथ इस पर भी कि कितने सूक्ष्मजीवी स्लज के सम्पर्क में हैं। दोनों प्रकार के विघटनों में दो बातें मुख्य रूप से होती हैं—प्रथम प्रदूषकों का एक्टीवेट्ड स्लज, जैवीय फिलम या सेप्टिक स्लज पर चिपकना तथा द्वितीय सूक्ष्मजीवों द्वारा उनका विघटन। प्रथम चरण काफी जल्दी होता है जबकि द्वितीय चरण में अधिक समय लगता है। इसके लिए पहले मल-जल को इकट्ठा कर भारी भाग (ठोस पदार्थ) तथा पानी को अलग-अलग कर लिया जाता है। फिर ठोस पदार्थ को रिएक्टर में उपचारित करने के लिए भेज दिया जाता है। यहाँ बिना ऑक्सीजन के अनाक्सीय सूक्ष्मजीवों द्वारा विघटन कराया जाता है। इससे हमें मीथेन गैस प्राप्त होती है।

बायो गैस विभाग, इन्डिया ग्लाइकोल्स लि०, पो० बा० नं०-22, बाजपुर रोड, काशीपुर-244713, जिला-नैनीताल (उत्तर प्रदेश)

अनाक्सीय विधि द्वारा स्लज का उपचार करने से जो रासायनिक अभिक्रियाएँ होती हैं वे काफी जटिल होती हैं तथा अनेक अनाक्सीय सूक्ष्मजीवों द्वारा संचालित होती हैं। इस उपचार के मुख्यतया तीन उद्देश्य हैं। प्रथम इसकी भौतिक बनावट को बदलना ताकि इसका आसानी से उपयोग अथवा त्याग किया जा सके, द्वितीय कार्बनिक पदार्थों को गैस में बदलकर स्लज की मात्रा को कम करना तथा तृतीय बचे हुए कार्बनिक पदार्थों को खाद की तरह उपयोग करना मीथेन किण्वन (फरमेन्टेशन) कहलाता है, क्योंकि किसी भी किण्वन का नाम उसके अन्तिम उत्पाद पर रखा जाता है। इसे 'बायोमीथेनोजिनेसिस' भी कहते हैं।

अनेक वैज्ञानिकों ने इसकी कार्यविधि का अध्ययन किया। 18वीं सदी में वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि नम मिट्टी (Damp Soil), जो कि कार्बनिक पदार्थों से युक्त थी, से मीथेन निकलती है। वर्ष 1875 में **एल० पोपोव** ने जब गम अराबिक (Gum arabic) को विघटित किया तो पाया कि इसमें कार्बन डाइ ऑक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाइड व मीथेन गैसें (CO_2, H_2S, CH_4) बनती हैं। **होपसेलर** ने 1887 में पाया कि एसिटिक तथा ब्यूटारिक अम्लों के कैल्शियम लवण के विघटन से मीथेन तथा कार्बन डाइऑक्साइड गैसें बनती हैं। इस क्रिया को बढ़ाने वाले सूक्ष्मजीव प्राकृतिक खाद में उपस्थित होते हैं। 1890 में **बी० एल० ओमेलिनस्कीव** ने बहुत सी जैविक विधियों का अध्ययन किया जिनमें मीथेन बनती है। उसने एसिटिक तथा ब्यूटारिक अम्लों को लवणों का स्यूडोसेटीसीन-से विघटन कराया तो पाया कि उसमें कार्बन डाइऑक्साइड तथा मीथेन गैसें बनती हैं।

$$2\,CH_3\,COOK + H_2O \rightarrow K_2CO_3 + CO_2 + 2\,CH_4$$

$$(C_4H_7O_2)_2\,Ca + 3\,H_2 \rightarrow CaCO_3 + 2\,CO_2 + CH_4$$

इसके पश्चात् मीथेन बनने की कार्यविधि पर काफी अध्ययन किया गया। **बारकर** ने 1936 में मीथेन जीवाणुओं (बैक्टीरिया) का शुद्ध कल्चर प्राप्त किया। यह विधि जीवाणुओं के रासायनिक तथा जैवरासायनिक गुणों पर आधारित थी। इन सूक्ष्मजीवों द्वारा निम्न अभिक्रियाएँ संचालित की जाती हैं—

$$4\,H_2B + CO_2 \rightarrow 4\,B + CH_4 + 2\,H_2O$$

$$4\,H_2 + CO_2 \rightarrow CH_4 + 2\,H_4O$$

$$2\,C_2H_5\,OH + CO_2 \rightarrow CH_4 + 2\,CH_3\,COOH$$

$$CH_3\,COOH + CO_2 \rightarrow CH_4 + 2\,CO_2$$

यहाँ H_2B कोई भी पदार्थ है, जिसके लिए सूक्ष्मजीवी एन्जाइम 'डिहाइड्रोजिनेज' रखता है। इन अभिक्रियाओं से पता चलता है कि कार्बन डाइऑक्साइड इन क्रियाओं में महत्वपूर्ण भूमिका अभिनीत करती है। बारकर ने कार्बन डाइऑक्साइड में रेडियोसक्रिय कार्बन प्रयोग करने के पश्चात् पाया कि कार्बन डाइऑक्साइड ही मीथेन (CH_4) में अपचयित होती है तथा मीथेन जीवाणु के सेल के पदार्थ बनाने में भी प्रयोग की जाती है।

स्कैनलन ने पाया कि मीथेन की दो जातियाँ-एम० एस० बारकेरीकेरी तथा एम० बी० फारमिकम, कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) को मीथेन (CH_4) में बदलते हैं। यदि हाइड्रोजन विद्यमान होती है तो सीधे मीथेन (CH_4) में अन्यथा यह पहले जल (H_2O) से ऑक्सीजन प्राप्त करके कार्बन मोनोऑक्साइड (CO) को CO_2 में तथा CO

अनाक्सीय विधि द्वारा स्लज को उपचार करने से जो रासायनिक अभिक्रियाएँ होती हैं वे काफी जटिल होती हैं तथा अनेक अनाक्सीय सूक्ष्मजीवों द्वारा संचालित होती हैं। इस उपचार के मुख्यतया तीन उद्देश्य हैं। प्रथम इसकी भौतिक बनावट को बदलना ताकि इसका आसानी से उपयोग अथवा त्याग किया जा सके, द्वितीय कार्बनिक पदार्थों को गैस में बदलकर स्लज की मात्रा को कम करना तथा तृतीय बचे हुए कार्बनिक पदार्थों को खाद की तरह उपयोग करना मीथेन किण्वन (फरमेन्टेशन) कहलाता है, क्योंकि किसी भी किण्वन का नाम उसके अन्तिम उत्पाद पर रखा जाता है। इसे 'बायोमीथेनोजिनेसिस' भी कहते हैं।

अनेक वैज्ञानिकों ने इसकी कार्यविधि का अध्ययन किया। 18वीं सदी में वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि नम मिट्टी (Damp Soil), जो कि कार्बनिक पदार्थों से युक्त थी, से मीथेन निकलती है। वर्ष 1875 में **एल० पोपोव** ने जब गम अराबिक (Gum arabic) को विघटित किया तो पाया कि इसमें कार्बन डाइ ऑक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाइड व मीथेन गैसें (CO_2, H_2S, CH_4) बनती हैं। **होपसेलर** ने 1887 में पाया कि एसिटिक तथा ब्यूटारिक अम्लों के कैल्शियम लवण के विघटन से मीथेन तथा कार्बन डाइऑक्साइड गैसें बनती हैं। इस क्रिया को बढ़ाने वाले सूक्ष्मजीव प्राकृतिक खाद में उपस्थित होते हैं। 1890 में **बी० एल० ओमेलिनस्कीव** ने बहुत सी जैविक विधियों का अध्ययन किया जिनमें मीथेन बनती है। उसने एसिटिक तथा ब्यूटारिक अम्लों को लवणों का स्यूडोसेटीसीन से विघटन कराया तो पाया कि उसमें कार्बन डाइऑक्साइड तथा मीथेन गैसें बनती हैं।

$$2\,CH_3\,COOK + H_2O \rightarrow K_2CO_3 + CO_2 + 2\,CH_4$$

$$(C_4H_7O_2)_2\,Ca + 3\,H_2 \rightarrow CaCO_3 + 2\,CO_2 + CH_4$$

इसके पश्चात् मीथेन बनने की कार्यविधि पर काफी अध्ययन किया गया। **बारकर** ने 1936 में मीथेन जीवाणुओं (बैक्टीरिया) का शुद्ध कल्चर प्राप्त किया। यह विधि जीवाणुओं के रासायनिक तथा जैवरासायनिक गुणों पर आधारित थी। इन सूक्ष्मजीवों द्वारा निम्न अभिक्रियाएँ संचालित की जाती हैं—

$$4\,H_2B + CO_2 \rightarrow 4\,B + CH_4 + 2\,H_2O$$

$$4\,H_2 + CO_2 \rightarrow CH_4 + 2\,H_4O$$

$$2\,C_2H_5\,OH + CO_2 \rightarrow CH_4 + 2\,CH_3\,COOH$$

$$CH_3\,COOH + CO_2 \rightarrow CH_4 + 2\,CO_2$$

यहाँ H_2B कोई भी पदार्थ है, जिसके लिए सूक्ष्मजीवी एन्जाइम 'डिहाड्रेज' रखता है। इन अभिक्रियाओं से पता चलता है कि कार्बन डाइऑक्साइड इन क्रियाओं में महत्वपूर्ण भूमिका अभिनीत करती है। बारकर ने कार्बन डाइऑक्साइड में रेडियोसक्रिय कार्बन प्रयोग करने के पश्चात् पाया कि कार्बन डाइऑक्साइड ही मीथेन (CH_4) में अपचयित होती है तथा मीथेन जीवाणु के सेल के पदार्थ बनाने में भी प्रयोग की जाती है।

स्कैनलन ने पाया कि मीथेन की दो जातियाँ-एम० एस० बारकेरीकेरी तथा एम० बी० फारमिकम, कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) को मीथेन (CH_4) में बदलते हैं। यदि हाइड्रोजन विद्यमान होती है तो सीधे मीथेन (CH_4) में अन्यथा यह पहले जल (H_2O) से ऑक्सीजन प्राप्त करके कार्बन मोनोऑक्साइड (CO) को CO_2 में तथा CO

अनाक्सीय विधि द्वारा स्लज को उपचार करने से जो रासायनिक अभिक्रियाएँ होती हैं वे काफी जटिल होती हैं तथा अनेक अनाक्सीय सूक्ष्मजीवों द्वारा संचालित होती हैं। इस उपचार के मुख्यतया तीन उद्देश्य हैं। प्रथम इसकी भौतिक बनावट को बदलना ताकि इसका आसानी से उपयोग अथवा त्याग किया जा सके, द्वितीय कार्बनिक पदार्थों को गैस में बदलकर स्लज की मात्रा को कम करना तथा तृतीय बचे हुए कार्बनिक पदार्थों को खाद की तरह उपयोग करना मीथेन किण्वन (फरमेन्टेशन) कहलाता है, क्योंकि किसी भी किण्वन का नाम उसके अन्तिम उत्पाद पर रखा जाता है। इसे 'बायोमीथेनोजिनेसिस' भी कहते हैं।

अनेक वैज्ञानिकों ने इसकी कार्यविधि का अध्ययन किया। 18वीं सदी में वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि नम मिट्टी (Damp Soil), जो कि कार्बनिक पदार्थों से युक्त थी, से मीथेन निकलती है। वर्ष 1875 में एल० पोपोव ने जब गम अराबिक (Gum arabic) को विघटित किया तो पाया कि इसमें कार्बन डाइ ऑक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाइड व मीथेन गैसें (CO_2, H_2S, CH_4) बनती हैं। होपसेलर ने 1887 में पाया कि एसिटिक तथा ब्यूटारिक अम्लों के कैल्शियम लवण के विघटन से मीथेन तथा कार्बन डाइऑक्साइड गैसें बनती हैं। इस क्रिया को बढ़ाने वाले सूक्ष्मजीव प्राकृतिक खाद में उपस्थित होते हैं। 1890 में बी० एल० ओमेलिनस्कीव ने बहुत सी जैविक विधियों का अध्ययन किया जिनमें मीथेन बनती है। उसने एसिटिक तथा ब्यूटारिक अम्लों को लवणों का स्यूडोसेटीसीन से विघटन कराया तो पाया कि उसमें कार्बन डाइऑक्साइड तथा मीथेन गैसें बनती हैं।

$$2\,CH_3\,COOK + H_2O \rightarrow K_2CO_3 + CO_2 + 2\,CH_4$$

$$(C_4H_7O_2)_2\,Ca + 3\,H_2 \rightarrow CaCO_3 + 2\,CO_2 + CH_4$$

इसके पश्चात् मीथेन बनने की कार्यविधि पर काफी अध्ययन किया गया। बारकर ने 1936 में मीथेन जीवाणुओं (बैक्टीरिया) का शुद्ध कल्चर प्राप्त किया। यह विधि जीवाणुओं के रासायनिक तथा जैवरासायनिक गुणों पर आधारित थी। इन सूक्ष्मजीवों द्वारा निम्न अभिक्रियाएँ संचालित की जाती हैं—

$$4\,H_2B + CO_2 \rightarrow 4\,B + CH_4 + 2\,H_2O$$

$$4\,H_2 + CO_2 \rightarrow CH_4 + 2\,H_4O$$

$$2\,C_2H_5\,OH + CO_2 \rightarrow CH_4 + 2\,CH_3\,COOH$$

$$CH_3\,COOH + CO_2 \rightarrow CH_4 + 2\,CO_2$$

यहाँ H_2B कोई भी पदार्थ है, जिसके लिए सूक्ष्मजीवी एन्जाइम 'डिहाड्रेज' रखता है। इन अभिक्रियाओं से पता चलता है कि कार्बन डाइऑक्साइड इन क्रियाओं में ₂महत्वपूर्ण भूमिका अभिनीत करती है। बारकर ने कार्बन डाइऑक्साइड में रेडियोसक्रिय कार्बन प्रयोग करने के पश्चात् पाया कि कार्बन डाइऑक्साइड ही मीथेन (CH_4) में अपचयित होती है तथा मीथेन जीवाणु के सेल के पदार्थ बनाने में भी प्रयोग की जाती है।

स्कैनलन ने पाया कि मीथेन की दो जातियाँ-एम० एस० बारकेरीकेरी तथा एम० बी० फारमिकम, कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) को मीथेन (CH_4) में बदलते हैं। यदि हाइड्रोजन विद्यमान होती है तो सीधे मीथेन (CH_4) में अन्यथा यह पहले जल (H_2O) से ऑक्सीजन प्राप्त करके कार्बन मोनोऑक्साइड (CO) को CO_2 में तथा CO

जैवरासायनिक विधि द्वारा CH_4 में बदल जाती है। प्रयोगों से पता चला है कि मीथेन बनाने वाले प्रत्येक सूक्ष्मजीव की अभिक्रिया भिन्न होती है तथा यह हमेशा सूक्ष्मजीवों की जाति तथा विघटित होने वाले पदार्थ पर निर्भर करती है। उदाहरण स्वरूप जब **मीथेनिका ओमेलिआनस्की,** एथिल एल्कोहॉल पर उपस्थित होता है तो वह उसे एसिटिक अम्ल से बदल देता है तथा CO_2 अपचयित होकर मीथेन बनाती है।

$$2\ C_2H_5 . OH + 14\ CO_2 \rightarrow 14\ CH_4 + 2\ CH_3\ COOH$$
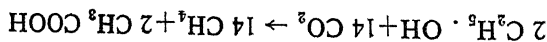
तथा जब **एम० मीथेनिका** मेथिल एल्कोहॉल पर अभिक्रिया करता है तो मीथेन बनाता है। इसमें मीथेन का अधिक भाग CO_2 से बनता है।

$$4\ CH_3OH \rightarrow 3\ CH_4 + CO_2 + 2\ H_2O$$

मीथेनोसारसिना बारकेरी एसिटिक अम्ल के मेथिल ग्रुप से मीथेन बनाता है।

$$14\ CH_3\ COOH \rightarrow 14\ CH_4 + CO_2$$
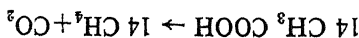
जब ये जीवाणु अधिक कार्बन एटम वाले अम्लों पर अभिक्रिया करते हैं तब मीथेन, CO_2 के अपचयन से बनती है, तथा अम्ल कार्बन एटम वाले अम्लों में विघटित हो जाता है, जिसमें कार्बन परमाणु (एटम) की मात्रा कुल मिलाकर पहले अम्ल के बराबर होती है।

$$2\ CH_3\ CH_2\ CH_2\ COOH + 2\ H_2O + 14\ CO_2 \rightarrow$$
$$14\ CH_4 + 2\ CH_3\ COOH + 2\ CH_3\ CH_2\ COOH$$
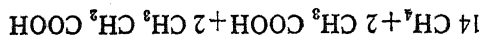
स्टेडमैन तथा **बारकर** ने एसिटिक अम्ल तथा मेथिल एल्कोहॉल से मीथेन बनने की विधि को इस प्रकार बताया कि विघटित होने वाले पदार्थ का एक भाग तो ऑक्सीकृत होता है तथा दूसरा भाग हाइड्रोजन के साथ अपचयित होकर मीथेन बनाता है। इस अभिक्रिया में पहले जल का एक अणु एन्जाइम द्वारा हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन में विघटित हो जाता है। इसके उपरान्त CO_2 हाइड्रोजन से जैव रासायनिक (बायोकेमिकल) अभिक्रिया द्वारा मीथेन में बदल जाती है तथा ऑक्सीजन डीकार्बोहाइड्रेड रेडिकल्स को अम्लों में परिवर्तित कर देती है। जब इस विधि द्वारा मल-जल को उपचारित किया जाता है तो 1 मी^{3} ठोस पदार्थ पूर्ण विघटित होकर 10-18 मी^{3} गैस देते हैं। इसमें 70 प्रतिशत मीथेन तथा 30 प्रतिशत CO_2 होती है। इसके उपरान्त जो ठोस पदार्थ विघटित नहीं होते, उनमें ज्यादातर खनिज लवण (मिनाल) तथा कार्बनिक होते हैं। ये पदार्थ पौधों के लिए अधिक उपयोगी होते हैं। इनमें मुख्यतः 12 प्रतिशत ह्यूमिन, 3 प्रतिशत नाइट्रोजन, 3.78 प्रतिशत फॉस्फोरिक अम्ल, 0.22 प्रतिशत K_2O तथा 1 प्रतिशत कैल्शियम ऑक्साइड होते हैं, जिनकी वजह से इसका उपयोग एक अच्छी प्राकृतिक खाद के रूप में किया जा सकता है।

●●

खाड़ी युद्ध की चपेट में पर्यावरण

गणेश कुमार पाठक

खाड़ी युद्ध समाप्त हो चुका है, पर उसका असर बाकी है। अर्थव्यवस्था पर भी और पर्यावरण पर भी। कुवैत में तेल के जलते कुंए अभी भी हर रोज लाखों टन धुआँ उगल रहे हैं। खाड़ी युद्ध ने पर्यावरण के लिए गम्भीर खतरा पैदा कर दिया है।

खाड़ी युद्ध के दौरान सागर में अपार तेल बहाया गया। इससे लगभग एक लाख से अधिक पक्षियों की मृत्यु हो चुकी है, असंख्य जल-जीव, मछलियाँ आदि तड़प-तड़प कर दम तोड़ चुकी हैं। दुर्लभ किस्म के लगभग 20,000 कछुए भी इस विनाश लीला के शिकार हो चुके हैं। ये कछुए अप्रैल तक अण्डा देते हैं। इनसे उत्पन्न कछुओं के बच्चे जब समुद्र तट की ओर बढ़ेंगे तो तेलयुक्त जल में प्रवेश करने से मर जायेंगे। इस तरह इस दुर्लभ प्रजाति के कछुओं की समाप्ति का आसन्न संकट उत्पन्न हो गया है। इसके अलावा समुद्र के किनारे बसे नगरों की जल आपूर्ति व्यवस्था भी बुरी तरह प्रभावित हुई है।

ईराक द्वारा कुवैत के तेल कुओं में लगाई गई आग से उत्पन्न धुएँ से कई पर्यावरण समस्याएँ पैदा हो रही हैं। कुओं से जो धुआँ निकल रहा है वह आस-पास लगभग 500 किलोमीटर के घेरे में फैल गया है। यह तीन किलोमीटर की ऊँचाई तक उठ रहा है। इस ऊँचाई से ऊपर जाने वाला धुआँ तेज गति से पूरब दिशा की ओर बढ़ रहा है। कारण कि जनवरी से मार्च तक वायु पश्चिम से पूरब की ओर बढ़ती है। इसलिए सम्भावना है कि यह धुआँ पश्चिम भारत के वायुमण्डल तक भी पहुँच सकता है।

यही नहीं तेल कुओं की आग से अगर धूल भरी आँधी उठती है तो वायुमण्डल में छा जायेगी जिससे पृथ्वी पर धूप कम हो जायेगी। इसके प्रभाव से तापमान में कमी हो जायेगी। इसका असर भारत तक भी पड़ सकता है। धुएँ में काजल कण और शुद्ध कार्बन की मात्रा है जो सूर्य किरणों का सहज ही अवशोषण कर रही है। ये बादल भारत और दक्षिण एशिया तक फैलकर मानसून की दशा को भी प्रभावित कर सकते हैं। यह विचार रसायन इंजीनियर डॉ० जान काक्स का है, किन्तु कुछ भारतीय वैज्ञानिकों ने एक रिपोर्ट की भूमिका में मानसून के प्रभावित होने की बेबुनियाद बताकर मात्र इतना ही स्वीकार किया है कि धुएं के बादल पश्चिमी भारत के ऊपर लगभग तीन सप्ताह तक रुके रह सकते हैं। वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसन्धान परिषद के पूर्व महानिदेशक डॉ० ए० पी० मित्र का भी विचार है कि धुएं के बादलों का मानसून पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं होगा। हाँ, पर्यावरण को थोड़ी बहुत अस्थाई क्षति पहुँच सकती है।

प्रसिद्ध खगोल विज्ञानी डॉ० कार्ल सागन के अनुसार युद्ध से बनने वाले धुएं का दुष्प्रभाव जितना अभी सोचा जा रहा है उससे अधिक होगा, इससे मौसम में भी बदलाव आ सकता है। ऊपरी गोलार्द्ध के कम से कम 10

सम्पर्क सूत्र : डी–720, सरस्वती विहार, दिल्ली–110034

प्रतिशत भाग पर खाड़ी युद्ध के धुएं का बुरा प्रभाव पड़ेगा। विषैला धुँआ 5,000 किलोमीटर दूरी तय कर दक्षिण एवं पूर्वी एशिया में भी पहुँच सकता है।

वैज्ञानिकों का कहना है कि धुएं से उत्पन्न कार्बन डाइ-ऑक्साइड वातावरण में सन् 2091 तक रहेगी और वायुमण्डल को गरम करने में योगदान देगी। साथ ही अम्ल वर्षा होने का भी खतरा उत्पन्न हो गया है, धुएं के बादल के प्रभाव से पृथ्वी के तापमान में आधा डिग्री सेल्सियस की कमी आयेगी जिससे जीवधारियों के लिए अनेक समस्यायें उत्पन्न हो जायेगी।

जान काक्स का कहना है कि काले धुएं के बादलों के कारण कई वर्ष तक मानसून दगा भी दे सकता है। कारण कि मानसून के लिए जमीन और महासागर के तापमान में काफी अन्तर होना आवश्यक है। धूल और काले धुएं के बादल जमीन के तापमान को पर्याप्त बढ़ने नहीं देंगे तो जमीन और महासागर के तापमान में अधिक अन्तर ही नहीं होगा। वैसी दशा में मानसून निश्चय ही दगा दे सकता है। किन्तु, वहीं दूसरी तरफ प्रसिद्ध वैज्ञानिक **डॉ० गोवरीकर** का कहना है कि एशिया के एक बहुत बड़े भाग के काले धुएं के बादलों से आच्छादित हो जाने पर भी मानसून पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा। इस तरह धुएं के मौसम पर प्रभाव के बारे में वैज्ञानिक एकमत नहीं हैं।

दक्षिण कोरियाई पर्यावरण मन्त्रालय के अनुसार एक माह के खाड़ी युद्ध ने 18 लाख टन सल्फरडाइ-ऑक्साइड, डेढ़ लाख टन धूल और चार करोड़ टन कार्बन डाइऑक्साइड वायुमण्डल में डाल दी है। इसके भयंकर परिणाम निकलेंगे। इसके प्रभाव से धूप का समय कम हो जायेगा जिससे कृषि उत्पादन में गिरावट आयेगी और मानव स्वास्थ्य के लिए भी कई समस्याएँ खड़ी होंगी।

नकली और प्रतिबन्धित दवाओं के विरुद्ध आन्दोलन चलाने वाली अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर चर्चित भारतीय महिला **डॉ० मीना शिवा** के अनुसार अमेरिका ने इस युद्ध में अघोषित रसायनिक युद्ध प्रारम्भ कर दिया था जो ईराक में टायफाइड, हैजा और अनेक महामारियों को जन्म दे चुका है, जिसके शिकार अधिकतर बच्चे तथा गर्भवती स्त्रियाँ हो रही हैं। बच्चों में सबसे अधिक 'स्ट्रेस सिंड्रोम' देखा जा रहा है जिसके प्रभाव से उनके मनोविज्ञान में दयनीय बदलाव आयेगा और वे बुरे, भयानक सपने तथा भय आदि समस्याओं से ग्रसित हो जाएँगे। उन्हें शायद ही कभी उससे मुक्ति मिल पाये। स्त्रियों में एसफिक्सिया के लक्षण प्रकट होने लगे हैं, जिनके चलते गर्भवती महिलाएँ मन्द बुद्धि एवं अल्प-विकसित बच्चों को जन्म देंगी।

कैंसर विशेषज्ञ **डॉ० सूरज वर्मा** का कहना है कि खाड़ी युद्ध से कैंसर जैसी भयानक बीमारियों में केवल वृद्धि ही नहीं होगी बल्कि उनके इलाज में भी मुश्किल पैदा हो जायेगी। डॉ० वर्मा का कहना है कि खाड़ी युद्ध का प्रभाव आर्थिक और सामाजिक पक्ष पर तो पड़ेगा ही, स्वास्थ्य पर पड़ने वाला प्रभाव सबसे गहरा होगा और लम्बे समय तक बना रहेगा। डॉ० वर्मा के अनुसार खाड़ी युद्ध के कारण अब तक बड़ी मात्रा में वायु एवं जल प्रदूषण हो चुका है और पर्यावरण के लिए गम्भीर खतरा पैदा हो गया है, जिसे दूर करने के उपायों पर अविलम्ब कार्यवाही की जानी चाहिए।

●●

(सम्प्रेषण)

कैंसर उपचार के लिए स्वदेशी मशीन

हरीश अग्रवाल

कैंसर के उपचार के लिए लीनियर एक्सेलेरेटर मशीन अत्यन्त आवश्यक उपकरण है। अभी तक इसे विदेशों से आयात किया जाता था। इसे कैंसर के उपचार में लगे अस्पतालों को आसानी से उपलब्ध कराने के लिए देश में ही उत्पादित करने का कार्य किया जा रहा है।

सार्वजनिक क्षेत्र के पाँच प्रतिष्ठानों ने मिलकर एक समझौते पर हस्ताक्षर किये हैं, जिसके अनुसार वे कैंसर चिकित्सा के लिये लीनियर एक्सेलेरेटर मशीनें बनायेंगे। यह घोषणा इलेक्ट्रॉनिक्स विभाग के सचिव श्री **एन० विट्ठल** ने हाल में ही एक प्रेस कान्फ्रेंस में की थी।

पाँच प्रतिष्ठान हैं, भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड, इलेक्ट्रॉनिक्स कॉर्पोरेशन ऑव इंडिया लिमिटेड, भारत इलेक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड, यूल एण्ड कम्पनी तथा इंस्ट्रूमेंटेशन लिमिटेड। इस वर्ष वे इस प्रकार की दो मशीनें बनायेंगे। ये कलकत्ता तथा कूच बिहार के अस्पतालों में लगाई जायेंगी। मशीन के विभिन्न कलपुर्जे तैयार करने के लिए बहुत अच्छा प्रबन्ध किया गया है। पाँचों प्रतिष्ठानों में ये अलग-अलग बनाये जायेंगे। अब तक विदेशों से मँगाने पर इस मशीन पर करोड़ रुपया खर्च आता था, लेकिन देश में बनाने पर 80 लाख रुपया खर्च आयेगा। विदेशी मुद्रा की बचत के साथ-साथ समय की भी बचत होगी। विदेशों से मशीनें आने में बड़ी देर लगती थी क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय मशीन निर्माताओं के पास सप्लाई के लिए लम्बी प्रतीक्षा सूची रहती है। आशा की जा रही है कि व्यापारिक उत्पादन के साथ-साथ देशी मशीनों की कीमतें भी नीचे आ जायेंगी।

भारत में इस समय केवल दस लाइनेक मशीनें हैं। कैंसर रेडियोथेरेपी मशीनों की संख्या केवल 160 है। यह संख्या बहुत कम है, क्योंकि 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' के अनुसार विकासशील देशों में दस लाख की जनसंख्या के लिए कम से कम एक मशीन की जरूरत होती है।

इस मशीन की रूपरेखा, विकास तथा निर्माण का काम संयुक्त रूप से सोसायटी फॉर एप्लाइड माइक्रोवेव इलेक्ट्रॉनिक्स एण्ड इंजीनियरी रिसर्च, सेन्ट्रल साइंटिफिक इंस्ट्रूमेंट्स आर्गनाइजेशन तथा पोस्ट ग्रेजुएट इंस्टीट्यूट फॉर मेडिकल एजुकेशन एण्ड रिसर्च ने किया है। इसके लिए धन इलेक्ट्रॉनिक्स विभाग ने दिया है।

इस मशीन का एकप्रो टोटाइप फरवरी 1990 से पोस्ट ग्रेजुएट इंस्टीट्यूट फॉर मेडिकल एजुकेशन में काम कर रहा है। इससे प्रतिदिन 45 मरीजों का उपचार किया जा रहा है। इसी सफलता को देखते हुए इलेक्ट्रॉनिक्स विभाग ने देश में ही बड़े स्तर पर इनके निर्माण का काम हाथ में लिया।

सम्पर्क सूत्र : डी-720, सरस्वती बिहार, दिल्ली-110034

श्री विट्ठल ने बताया कि देश में पाँच सरकारी प्रतिष्ठानों द्वारा इस प्रकार की चिकित्सा मशीन बनाने की यह पहली मिसाल है। इससे और अच्छे परिणाम सामने आयेंगे और भविष्य में इसके निर्यात की सम्भावनाएँ भी बढ़ेंगी। अनुमान लगाया गया है कि सन् 2000 तक लगभग 700 मशीनों की जरूरत पड़ेगी।

इस समय सारे संसार में कैंसर सबसे भयंकर रोग हो गया है और यह बड़ी संख्या में आदमियों की जान ले लेता है। इस समय भारत में प्रति वर्ष 5 लाख नये कैंसर रोगी होते हैं जिनमें तीन लाख मर जाते हैं। अनुमान लगाया गया है कि 1990 में 18 लाख कैंसर रोगी थे। सन् 2000 तक यह संख्या 30 लाख हो जायेगी। कैंसर मरीजों में से 60 प्रतिशत की किसी न किसी प्रकार विकिरण चिकित्सा की जाती है। रेडियोथेरेपी उपचार शल्य-चिकित्सा के साथ किया जाता है और इसमें रोगी के बचने की ज्यादा सम्भावना रहती है। यद्यपि विकिरण चिकित्सा की अन्य विधियाँ भी हैं, लेकिन इस समय विकसित संसार में सबसे ज्यादा प्रचलित मेडिकल लीनियर एक्सेलेरेटर ही है। यह आधुनिक मशीन विकिरण कैंसर चिकित्सकों को कार्यकुशलता तथा विश्वसनीयता प्रदान करती है।

इसके महत्व को देखते हुए इलेक्ट्रॉनिक्स विभाग ने 4-6 मिली इलेक्ट्रॉन वोल्ट निम्न ऊर्जा लीनियर एक्सेलेरेटर बनाने के लिए सहायता दी। बताया गया है कि निम्न ऊर्जा लिनाक मशीन कैंसर उपचार के लिए इस समय उपयोग में लाई जा रही कोबॉल्ट थेरेपी का स्थान ले लेगी। नई मशीन के साथ खास बात यह है कि स्वस्थ ऊतकों पर अचानक तथा हानिकारक विकिरण नहीं पड़ता और किसी प्रकार की त्वचा प्रतिक्रिया नहीं होती।

स्वदेशी प्रौद्योगिकी का लाभ यह है कि मरम्मत, रख-रखाव तथा कलपुर्जे की उपलब्धि तुरन्त हो सकेगी। कम ऊर्जा वाली इस मशीन की सफलता के बाद उच्च ऊर्जा वाले लीनियर एक्सेलेरेटर के विकास का काम भी शुरू हो गया है, जिसमें फोटॉनों और इलेक्ट्रॉनों के कई गुना पुंज उपलब्ध हो सकेंगे। यह कार्य भी समीर बम्बई, सी० एस० आई० ओ० चण्डीगढ़ तथा पी० जी० आई० चण्डीगढ़ में शुरू किया गया है।

●●

(सम्प्रेषण)

खोज न्यूट्रीनो कणों की

राघवेन्द्र कृष्ण प्रताप

सोवियत संघ के काकेशस क्षेत्र में बाक्सान की एक खान में इस वर्ष के प्रारंभ से ही एक अतिसंवेदी संसूचक भूमितल के बहुत नीचे एक सूक्ष्मातिसूक्ष्म सौर-कण की खोज के लिए सतत सचेष्ट है। इस संसूचक का निर्माण सोवियत अमेरिकन सहयोग से किया गया है, और यह कार्यक्रम भी दोनों देशों के सहयोग से चलाया जा रहा है। पर्याप्त समय बीत चुका है परन्तु उस सौर कण ने अपनी उपस्थिति का कोई संकेत अभी तक नहीं दिया है।

प्रवक्ता (शिक्षा), ए० पी० एन० महाविद्यालय, बस्ती-272001 (उत्तर प्रदेश)

प्रयोग के निषेधात्मक परिणामों से सामान्यतया निराशा की भावना उत्पन्न होनी चाहिए थी। परन्तु स्थिति इसके विपरीत है। वैज्ञानिकों का एक वर्ग इन परिणामों से अत्यन्त उत्साहित है और आशा कर रहा है कि इन प्रयोगों के परिणामों से इस सिद्धान्त की पुष्टि हो सकेगी। ब्रह्माण्ड के सम्पूर्ण आधारभूत बल एक अकेली सार्व-भौमिक घटना या प्रभाव के अभिव्यक्ति मात्र हैं। इससे खगोल-भौतिकविदों के महा-एकीकरण सिद्धांत की भी पुष्टि सम्भव हो सकेगी। प्रिस्टन के उच्च अध्ययन संस्थान के खगोल भौतिकशास्त्री डॉ० जान एन० बाकाल के अनुसार यह महा-एकीकरण के सिद्धांत का प्रथम प्रयोगात्मक साक्ष्य होगा। डॉ० बाकाल विश्व के सौर-कण-न्यूट्रीनो के विशेषज्ञों में से एक हैं।

इससे एक और निष्कर्ष भी प्राप्त होने की सम्भावना है कि इन निम्न-ऊर्जा कणों का भार चाहे जितना न्यून हो, परन्तु कुछ भार तो होता ही है। यह धारणा पहली धारणा के विपरीत है कि न्यूट्रीनो का कोई भार नहीं होता। न्यूट्रीनो के भार की स्थिति में ब्रह्मांड के अनदेखे पदार्थ मात्रा जिसे 'कृष्ण पदार्थ' कहा जाता है और जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्डीय पदार्थ मात्रा का लगभग 90 प्रतिशत भाग है, के अधिकांश का अनुमान लगाना सम्भव हो सकेगा। ब्रह्माण्ड वैज्ञानिकों के लिए इस अनुमान का असाधारण महत्व है क्योंकि इससे ब्रह्माण्ड की रचना और उसकी विकास-प्रक्रिया पर प्रकाश पड़ने की सम्भावना है।

वर्तमान स्वीकृत सिद्धांत के अनुसार सूर्य के केन्द्र में घटित नाभिकीय संगलन से अनेक प्रकार के न्यूट्रीनो-कणों की उत्पत्ति होती है और इनकी पर्याप्त संख्या को पृथ्वी में निरीक्षित किया जा सकता है। आश्चर्य है कि पहले किये गये प्रयोगों से पृथ्वी के वातावरण में न तो उच्च ऊर्जा वाले न्यूट्रीनो की उपस्थिति का साक्ष्य प्राप्त हुआ और न ही काकेशस-प्रयोग से अब तक किसी निम्न ऊर्जा न्यूट्रीनो की उपस्थिति की पुष्टि हो सकी है।

वैज्ञानिकों ने सौर कणों की उपस्थियि का साक्ष्य प्राप्त न होने को सौर न्यूट्रीनो-समस्या का नाम दिया है। क्योंकि इससे संकेत मिलता है कि या तो सौर नाभिकीय संगलन के मान्य सिद्धांत में कोई कमी है अथवा कण-भौतिकी की समझ ही त्रुटिपूर्ण है।

जान नोबुल विल्फ्रेड के एक लेख के अनुसार "चाहे सोवियत संघ से प्राप्त परिणाम सही हों या गलत, वे वैज्ञानिकों को यह विचार करने के लिए प्रेरित कर रहे हैं कि सिद्धांत द्वारा भविष्यवाणी किये गये सौर कण आखिर गये कहाँ? इन नवीन सिद्धांतों में सौर कणों के अन्य अनिरीक्ष्य कणों में परिवर्तन की सम्भावना व्यक्त की जा रही है। परिवर्तन की इस प्रक्रिया से ब्रह्माण्डीय पदार्थ की अपेक्षाकृत अधिक मात्रा और महाएकीकरण के सम्बन्ध में संकेत प्राप्त होते हुए प्रतीत होते हैं।"

यद्यपि डॉ० बाकाल सोवियत रूस के परिणामों की सत्यता पर विश्वास करते हैं परन्तु वैज्ञानिकों का एक अन्य वर्ग इन परिणामों को अंतिम मानने के लिये प्रस्तुत नहीं है। ब्रुकहैवेन राष्ट्रीय प्रयोगशाला के भौतिकशास्त्रियों, जिन्होंने प्रारम्भिक सौरकण प्रयोग किये थे, की चेतावनी है कि इन निष्कर्षों के पूर्व यह भी सुनिश्चित कर लिया जाना चाहिये कि प्रयोग की योजना अथवा विश्लेषण की प्रक्रिया पूर्णतया दोषरहित है। ब्रुकहैवन प्रयोगशाला के निदेशक **डॉ० निकोलस सैमिओस** के अनुसार "हो सकता है कि निष्कर्ष सही हों। परन्तु जब आप कुछ भी निरीक्षित नहीं करते, आपका परिणाम शून्य होता है तो इसके अनेक कारण हो सकते हैं। मेरा कहना है कि निष्कर्षों पर इतनी जल्दी छलांग नहीं लगायी जानी चाहिये।"

परन्तु सोवियत प्रयोग दल के एक अमेरिकी सदस्य—**लास एल्मास**, राष्ट्रीय प्रयोगशाला के **डॉ० थामस बाउल्स** इन प्रयोगों के परिणामों से पूरी तरह आश्वस्त है और इटली में इसी वर्ष प्रारम्भ होने वाले समान प्रयोग के परिणामों की प्रतीक्षा में हैं।

सोवियत प्रयोग के परिणामों की घोषणा जेनेवा में की गयी थी। सोवित-अमेरिकन गैलियम एक्सपेरीमेंट (एस० ए० जी० ई०) के अनुसार सूर्य में संगलन के परिणामस्वरूप उत्पन्न सर्वाधिक न्यूट्रीनो पृथ्वी तक आते-आते विलुप्त हो जाते हैं यद्यपि गणनाओं के अनुसार संसूचक को 60 दिनों की अवधि में कम से कम 14 न्यूट्रीनो की उपस्थिति दर्शानी चाहिये थी।

सौर नाभिकीय संगलन की मान्यता प्राप्त विचारधारा के अनुसार सूर्य के केन्द्र में प्रति सेकेण्ड 60 करोड़ टन हाइड्रोजन हीलियम में परिवर्तित होती रहती है और इस प्रक्रिया में न्यूट्रीनो-कणों की एक विशाल संख्या उत्पन्न होती है। अब तक यह स्वीकार किया जाता रहा है कि न्यूट्रीनो-कण भारहीन, आवेशहीन कण होते हैं और प्रकाश के वेग से गतिशील रहते हैं। पदार्थ से उनकी न्यून अंतर्क्रिया के कारण वे सूर्य के केन्द्र से उसकी सतह तक और फिर ब्रह्माण्ड में यात्रा करते हैं। यदि इन कणों का अध्ययन किया जा सकता तो सूर्य के आंतरिक प्रक्रिया के सम्बन्ध में कुछ जानकारी सम्भव हो जाती।

इसी उद्देश्य से बीस वर्ष पूर्व **डॉ० रेमंड डेविस** (जू०) के नेतृत्व में ब्रुकहैवेन प्रयोगशाला के अनुसंधान-कर्ताओं ने साउथ डकोटा की एक सोने की खान के तल पर एक सौर न्यूट्रीनो संसूचक स्थापित किया जिससे यह अवांछित कणों के प्रभाव से सुरक्षित रह सके। संसूचक का मुख्य भाग क्लोरीनमिश्रित द्रव का एक पात्र था। यदि न्यूट्रीनो कण उस द्रव से गुजरते तो वे रेडियोसक्रिय आर्गन के चिन्ह छोड़ देते। परन्तु गणनाओं के द्वारा न्यूट्रीनो कणों की जो संख्या प्राप्त होनी चाहिए थी, डॉ० डेविस ने उसकी एक तिहाई संख्या ही प्राप्त की।

सिद्धांत और प्रयोग के परिणामों के मध्य के इस अंतराल के अध्ययन के लिए एक अन्य प्रयोग—कामियोकांडे प्रयोग—जापान में किया गया। इसमें न्यूट्रीनो कणों की पहचान के लिए पानी पर आधारित एक विधि का प्रयोग किया गया, परन्तु यहाँ भी अपेक्षित संख्या से बहुत कम न्यूट्रीनो-कणों का संकेत मिल सका।

ब्रुकहैवेन और कामियोकांडे प्रयोगों के संसूचक उच्च ऊर्जायुक्त न्यूट्रीनो कणों के प्रति संवेदनशील थे। सोवियत अमेरिकन प्रयोग में प्रयुक्त की गयी तकनीक से दोनों प्रकार के न्यूट्रीनो कणों की उपस्थिति का पता लग सकता है। इस प्रयोग में सोवियत विज्ञान अकादमी, लास एल्मास, प्रिंसटन, पेन्सिलवानिया और लुइसियाना विश्वविद्यालय सहयोगरत हैं। संसूचक के माध्यम रूप में इस प्रयोग में गैलियम-71 नामक धातु की 30 टन मात्रा उपयोग में लायी जा रही है। यह धातु सामान्य अवस्था में द्रव होती है और यदि कोई न्यूट्रीनो कण इससे गुजरे तो उसे रेडियोसक्रिय जर्मेनियम-71 उत्पन्न करना चाहिए। इसकी उपस्थिति को निरीक्षित और गणना करना सम्भव है। परन्तु अभी तक ऐसी किसी स्थिति का निरीक्षण नहीं हो सका है। सैद्धांतिक अनुमानों के अनुसार ऐसी घटना एक दिन में एक बार अवश्य होनी चाहिए थी।

'नोबेल पुरस्कार' प्राप्त **डॉ० हैन्स ए० बेथ** के अनुसार प्राप्त परिणाम पाँच वर्ष पूर्व प्रस्तुत किये गये मिखेयव-स्मिरनोव-वुल्फेन्स्टीन आदर्श के अनुरूप हैं जिसमें न्यूट्रीनो कण को पूर्णतया भारहीन मानने के स्थान पर उसका

थोड़ा भार होने की उपकल्पना प्रस्तुत की गयी है। इस आदर्श के अनुसार जब न्यूनातिन्यून भार वाले न्यूट्रीनो कण की अंतक्रिया पदार्थ से होगी तो इसमें दोलन की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी जिससे वह अधिक भारी टाउ अथवा म्यूआन कणों में परिवर्तित हो जायेगा, और इन कणों को प्रयुक्त संसूचक निरीक्षित करने में असमर्थ हैं।

यह भी ध्यान देने की बात है कि अंतक्रिया के दौरान कण ऐसे व्यवहार करता है जैसे उसकी मात्रा उसके चतुर्दिक उपस्थित पदार्थ के घनत्व के कुछ अंश में बढ़ गई हो, परन्तु सूर्य के केन्द्र में जहाँ यह प्रक्रिया घटित होती है, घनत्व बहुत अधिक होता है जिसका छोटा अंश भी महत्वपूर्ण हो जाता है।

डॉ० बेथ के अनुसार बाक्सान-प्रयोग के परिणाम यह कहते हुए प्रतीत होते हैं कि न्यूट्रीनो कण किन्हीं अनिरीक्ष्य कणों में परिवर्तित हो जाते हैं और यह परिणाम मिखेयेवस्मिरनोव-वुल्फेन्स्टोन आदर्श के परिणामों के समान हैं। इनसे यह संकेत मिलता है कि न्यूट्रीनो कण भारहीन नहीं होते। परन्तु वे यह नहीं स्वीकार करते है कि इन परिणामों से महाएकीकरण की धारणा को पुष्ट किया जा सकता है। उनके विपरीत डॉ० बाकाल आश्वस्त हैं कि इस प्रयोग के परिणाम हमें महाएकीकरण की ओर ले जाने का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। भारयुक्त न्यूट्रीनो कण खगोल वैज्ञानिकों को ब्रह्माण्ड के उस 'कृष्ण पदार्थ' के सम्बन्ध में भी जानकारी के द्वार खोलेगा जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का 90 प्रतिशत पदार्थ भाग है। खगोल वैज्ञानिक यह तो जानते हैं कि ऐसा कोई अनिरीक्ष्य पदार्थ अस्तित्व में है क्योंकि उसका प्रभाव तारों और नीहारिकाओं पर भी देखा जाता रहा है। लेकिन 'कृष्ण पदार्थ' केवल न्यूट्रीनो कणों से निर्मित है, यह धारणा अनेक खगोल वैज्ञानिकों को भी अभी मान्य नहीं है।

परन्तु यह सत्य हैं कि सूर्य में जन्म लेकर रूप परिवर्तन करके संसूचकों के संवेदी क्षेत्र में अनिरीक्ष्य हो जाने वाले न्यूट्रीनो-कणों के संबंध में जो भी जानकारी प्राप्त होगी उससे हम ब्रह्माण्ड के कुछ और रहस्य उद्घाटित करने में सफल होंगे।

●●

न्यूट्रीनो बतलायेंगे सृष्टि का हाल ?

वीरेन्द्र शर्मा

न्यूट्रीनो द्रव्य के उदासीन कण हैं जो सदैव प्रकाश के निर्वातीय वेग से चलते रहते हैं। इन कणों का द्रव्यमान अमापनीय तौर पर कम है। शून्य माना जाता रहा है। न्यूट्रीनो लैप्टानवंशीय है। इस परिवार के अन्य सदस्य हैं इलेक्ट्रॉन व उसका प्रतिकण पॉजिट्रॉन, म्यूऑन (ऋण आवेश से युक्त) तथा उसका प्रतिकण ऐन्टिम्यूऑन (धनावेशित म्यूऑन), ताउ अथवा ताउ-ऑन एवं उसका प्रतिकण एन्टिताउऑन।

परम्परा के अनुसार द्रव्य के बुनियादी कणों (प्राथमिक या मूलभूत कणों) की दुनिया में ऋण आवेशित लैप्टानों को कण तथा धनावेशित लैप्टानों को उनसे संगत या उनका प्रतिकण कह दिया जाता है।

व्याख्याता, भौतिकी, 882/29, कमल कॉलोनी, रोहतक-124001 (हरियाणा)

द्रव्य को बनाने वाले अन्य प्राथमिक कण क्वार्क हैं जिन पर भिन्नीय आवेश हैं तथा इनमें से कुछ क्वार्कों का द्रव्यमान 0.3 मिलियन इलेक्ट्रॉन वोल्ट के बराबर तथा शेष का और भी ज्यादा है। न्यूट्रॉन, प्रोटॉन व उनसे और भी भारी कण बैरिऑन्स तथा मीजॉन्स नामक कण क्वार्कों से मिलकर ही बने हैं। प्रोटॉन व न्यूट्रॉन पदार्थ का मूल पदार्थ नहीं हैं, इनमें संरचनायें हैं। ये अपने से भी ज्यादा प्राथमिक कणों—क्वार्क से बने हैं।

प्रत्येक आवेशित लेप्टॉन से संगत एक न्यूट्रीनो कण हैं। उसका प्रतिकण रेनटि न्यूट्रीनो है। इलेक्ट्रॉन, म्यूऑन एवं ताउ लैप्टॉन से संगत हमारे पास इलेक्ट्रॉन न्यूट्रीनो, म्यूऑन न्यूट्रीनो, ताउन्यूट्रीनो तो हैं, ही इनमें से प्रत्येक के प्रतिकण भी हैं। सभी लैप्टानों को फर्मियान कहा जाता है क्योंकि इनके अन्दर घूर्णन का परिमाण, कोणीय आवेग या नर्तत (स्पिन) का मान 1/2 है, जबकि शून्य या पूर्णांक नर्तन मान वाले कणों को बोसॉन कहा जाता है। फोटॉन, ग्रेविटॉन आदि बोसॉन हैं। न्यूट्रीनो का इन अर्थों में ध्रुवीकरण भी हो जाता है, क्योंकि इनके लट्टू की मानिन्द नर्तन करते अक्ष गति की दिशा में अनुपस्थापित हो जाते हैं। न्यूट्रीनो के लिए इस नर्तन की दिशा वामहस्तिक तथा इनके प्रतिकणों के लिए दक्षिण-हस्तिक (राइट-हैन्डिड) होती है।

न्यूट्रीनो के द्रव्यमानों को नापने का प्रयास किया गया है। प्रयोगों से इस द्रव्यमान की एक ऊपरी सीमा का कयास लगाने में (निर्धारण करने में) सफलता मिली है। इलेक्ट्रॉन-न्यूट्रीनो का द्रव्यमान इलेक्ट्रॉन के द्रव्यमान का बीस हजारवाँ हिस्सा आँका गया है। यूँ तो सभी न्यूट्रीनो (म्यूऑन-न्यूट्रीनो, ताउन्यूट्रीनो आदि) अतिहलके हैं लेकिन इनमें से भी इलेक्ट्रॉन न्यूट्रीनो सबसे कम द्रव्यमान वाला कण है।

इलेक्ट्रॉन-न्यूट्रीनो बीटा-क्षय (बीटा-डिके) का तनीजा हैं। सितारों की एटमी पट्टी में, सितारों के हृदय प्रदेश में (क्रोड़ में) बीटा-विखंडन प्रक्रियाएँ सम्पन्न होती रहती हैं। इन बीटा-क्षय प्रक्रियाओं की जानकारी के आधार पर ही न्यूट्रीनो-टोही उपकरणों या न्यूट्रीनो-संसूचकों का विकास किया गया है।

एक अन्वेषी (प्रोब) के रूप में न्यूट्रीनो का इस्तेमाल यह जानने के लिए भी किया जाता रहा है कि सितारे ऊर्जा किन प्रक्रियाओं से पैदा करते हैं। न्यूट्रीनो की टोह लेने में दो प्रक्रियाएँ मददगार साबित होती हैं।

न्यूट्रीनो जब भी किसी नाभिक द्वारा जज्ब कर लिया जाता है तब एक इलेक्ट्रॉन नाभिक से बाहर निकल जाता है (इलेक्ट्रॉन नाभिक के अन्दर मौजूद नहीं होता है, ऊर्जा के पदार्थ में रूपान्तरण का नतीजा है)।

न्यूट्रीनो एक इलेक्ट्रॉन से टकराने के बाद प्रकीर्णित हो जाता है। इस एव्ज इलेक्ट्रॉन से न्यूट्रीनो की एक ऐसी टक्कर सम्पन्न कारवाई जाती है जिसमें न ऊर्जा का ह्रास होता है न संवेग का। इन दोनों ही प्रक्रियाओं में इलेक्ट्रॉनों के प्रेक्षण न्यूट्रीनो की मौजूदगी की ओर इशारा करते हैं। दोनों ही प्रक्रियाएँ न्यूट्रीनो की ऊर्जा की टोह लेने में विधायक भूमिका निभासी हैं।

जब कुछ अपेक्षाकृत भारी सितारे (जिनका द्रव्यमान एक क्रान्तिक द्रव्यमान से अधिक होता हैं) ईंधन समाप्त होने पर फट जाते हैं तब उनका बचा खुचा केन्द्रीय भाग लट्टू की मानिन्द दबता खपता तेजी से घूमता हुआ एक न्यूट्रॉन सितारे में बदल जाता है। इस प्रक्रिया में सितारे की एटमी में मौजूद नाभिक इलेक्ट्रॉनों में बदल जाते हैं। इस प्रक्रिया में एक तेज कौंध व स्पन्द न्यूट्रीनो पैदा हो जाती है, पलक झपकते ही।

जब इस प्रकार पैदा हुआ न्यूट्रॉन सितारा तेजी से ठंडा होता है तब एक बार फिर न्यूट्रीनो-प्रति न्यूट्रीनो का जन्म होता है। न्यूट्रीनो-ऐन्टिन्यूट्रीनो युगल पैदा होते हैं। समझा जाता है कि ठंडे होने की (लट्टू की मानिन्द अपनी अक्ष पर तेजी से नर्तन करते न्यूट्रॉन सितारे के ठंडा होने की प्रक्रिया में) प्रक्रिया में 10^{53} अर्ग ऊर्जा विकिरित होती है ! ऊर्जा के इस विशाल परिमाण की तुलना सूर्य की कुल दीप्ति (लूमिनॉस इति) से की जा सकती है जो 2.3×10^{35} अर्ग प्रति मिनट है। भारी सितारे के इस प्रकार फटने को 'सुपरनोवा-विस्फोट' कहा जाता है। इस प्रकार के भारी सितारों (जिनका द्रव्यमान सौर द्रव्यमान कम से कम दस पन्द्रह गुणा ज्यादा होता है) की एटमी भट्टी में ही अपेक्षाकृत भारी तत्व लोहा आदि पैदा होता है), लट्टू की मानिन्द अपने ही अक्ष पर तेजी से घूमते स्पन्दी सितारे (पलसेटिंग-रेडियो-सोर्स) इन्हीं विस्फोटों के अन्तिम दबे-खपे अतिघनत्वीय अवशेष हैं।

सुपरनोवा-विस्फोटों से पैदा होने वाले न्यूट्रीनो कणों की टोह लेने के लिये हमारे पास न्यूट्रीनो-संसूचक, जिन्हें न्यूट्रीनो टेलिस्कोप भी कहा जाता है, तो है, लेकिन ये तभी कारगर साबित होते हैं जब ऐसा विस्फोट पृथ्वी से 10 किलोपार-सेकेण्ड की दूरी के अन्दर हो, 10 किलो पार-सेकेण्ड से अधिक दूरी पर न हो। पार-सेकेण्ड दूरी को नापने की एक ज्योतिर्विज्ञानीय इकाई है जो 3.26 प्रकाशवर्ष के बराबर होती है।

1987 में जब हमारी पड़ोसी मन्दाकिनी में ऐसा ही एक सुपरनोवा-विस्फोट (1987 एस० एन० विस्फोट) हुआ तब पृथ्वी पर स्थित न्यूट्रीनो संसूचक एकदम से मुस्तैद हो गये, कुछ को सक्रिय किया गया।

सारी सृष्टि में व्याप्त ब्रह्माण्डीय किरणें (जो वास्तव में आयनित हाइड्रोजन, हीलियम तथा भारी परमाणुओं तथा गामाकिरणों का साझा नाम है) जब पृथ्वी के वायुमंडल में दाखिल होती हैं तब इनकी असीम ऊर्जा वायुमंडलीय अणुओं से टकराकर पदार्थ के नये कण पैदा करती है। ऊर्जा का पदार्थीकरण हो जाता है। कुछ अति अल्पजीवी कण (हाइपरॉन्स) भी पैदा होते हैं, जिन्हें अति संवेदी कण संसूचक भी टोह नहीं पाते। इन टक्करों के फलस्वरूप न्यूट्रीनो भी पैदा होते हैं। इनमें म्यूऑन-न्यूट्रीनो का बाहुल्य होता है।

कुछ ज्योतिर्विज्ञानियों का विचार है कि सृष्टि में तीन केल्विन तापमान वाली दूधिया रोशनियों, पृष्ठभूमि विकिरण (बैक ग्राउन्ड माइक्रोवेव रेडियेशन) की मानिन्द उस महाविस्फोट के अवशेष के रूप में न्यूट्रीनो-विकिरण भी व्याप्त होना चाहिये, जो उस विलक्षण क्षण के एक सेकेण्ड बाद ही शेष पदार्थ से छिटककर अलग हो गया था, जब सृष्टि का जन्म हुआ था।

कुछ रेडियो-ज्योतिर्विज्ञानी ऐसा भी मानते हैं कि सृष्टि का नब्बे फीसदी हिस्सा अगोचर बना हुआ है। इसमें अदृश्य कोल्ड डार्क मैटर व्याप्त है। ठंडा व घनीभूत। इस ठंडे घने अदृश्य पदार्थ में न्यूट्रीनो की भी भागेदारी होनी चाहिये। यदि न्यूट्रीनो में सचमुच कुछ द्रव्यमान है तो उस द्रव्यमान का योगदान इस ठंडे पदार्थ को गुरुत्व-प्रदान में भी रहा है।

यदि न्यूट्रीनो का द्रव्यमान 25 इलेक्ट्रॉन वोल्ट के बराबर या उससे ज्यादा है तब एक दिन विस्तार शील ब्रह्माण्ड का फैलाव, दूध गंगाओं, दीर्घकाय नीहारिका-समूहों व सितारों की परस्पर भगदड़ व पलायन रुक भी सकता है। ब्रह्माण्ड के विस्तार को ब्रेक भी लग सकती है।

न्यूट्रीनो की टोह लेने में सबसे बड़ी दिक्कत यह है कि यह एक स्वतन्त्र कण नहीं है। यह कभी इलेक्ट्रॉन-न्यूट्रीनो होता है तो कभी म्यूऑन-न्यूट्रीनो तो कभी ताउन्यूट्रीनो। इन तीनो में परस्पर रूपान्तरण होता रहता है। कह सकते हैं न्यूट्रीनो अस्तित्व के संकट से ग्रस्त है। सोवियत विज्ञानियों ने पता लगाया है कि न्यूट्रीनो का द्रव्यमान 14 से लेकर 46 इलेक्ट्रॉन वोल्ट के बीच कुछ भी हो सकता है। सोवियत विज्ञानियों के अनुमान ट्रीटियम के क्षय पर आधारित हैं। रेडियोसक्रिय ट्रीटियम के क्षय के एक चरण (एण्ड प्वाइन्ट ऑव बीटा डिके) में न्यूट्रीनो का जन्म होता है। सृष्टि के तथाकथित संवरण (क्लोश्जॅर) का न्यूट्रीनो के द्रव्यमान से सम्बन्ध है। क्या सृष्टि के अंश (गोचर सृष्टि के प्रेक्षणीय अंश, नीहारिकाएँ, सितारे आदि) अनन्तकाल तक परस्पर एक दूसरे से दूर छिटकते रहेंगे ? और एक दिन सृष्टि ठंडी होते-होते, गतिज ऊर्जा के चुक जाने पर एक ठंडे श्मशान में बदल जायेगी (गुरुत्व की गिरफ्त में जाने के लिए)।

क्या न्यूट्रीनो का संयुक्त गुरुत्व, न्यूट्रीनो का सांझा द्रव्यमान, जिनकी संख्या सृष्टि में फोटॉनों की संख्या के ही बराबर है, एक दिन इस विस्तार को ब्रेक नहीं लगा देगा ?? इस विस्तार को रोकने के लिए बीस इलेक्ट्रॉन वोल्ट के तुल्य द्रव्यमान कोई कम राशि नहीं हैं। लेकिन यदि न्यूट्रीनो का द्रव्यमान साठ इलेक्ट्रॉन वोल्ट से ज्यादा है तब सृष्टि के वर्तमान कलेवर व विस्तार की व्याख्या कर पाना आसान नहीं रह जायेगा।

सृष्टि के विकास के महाविस्फोट सिद्धान्त (बिग बैंग या सुपरडेंस थ्योरी) के मुताबिक सूक्ष्मतरंग पृष्ठभूमि विकिरण व न्यूट्रीनो के अलावा विस्फोट के बचे खुचे अंश के रूप में सृष्टि में गुरुत्वीय तरंगें भी व्याप्त होनी चाहिये।

सोवियत संघ के जेल्डॉविख तथा भारत के आर० काउसिक के अनुसार भीमकाय नीहारिका समूहों तथा नीहारिकाओं के अनुमित कलेवर की सटीक व्याख्या के लिए न्यूट्रीनो का द्रव्यमान 20 इलेक्ट्रॉन वोल्ट तो होना ही चाहिये। न्यूट्रीनो को द्रव्यमान शून्य मान लेने पर अनुमित गतिज ऊर्जा समूहों के बनने को असम्भव ठहरा देती है। आधुनिक गणनाएँ इसी ओर संकेत करती हैं।

हॉट डॉर्क मैटर थ्योरी वृहदकाय सृष्टि रूपों व संरचनाओं की व्याख्या तो करती है लेकिन यह बतलाने में असमर्थ है कि नीहारिकाएँ इतनी जवान क्यों हैं ? जबकि इन्हें वृहद झुण्डों व समूहों के साथ ही बन जाना चाहिये था। ये बाद में क्यों बनीं ??

कोल्ड डार्क मैटर सिद्धान्त इसके विपरीत सृष्टि में अधिक द्रव्यमान वाले कणों की मौजूदगी की ओर संकेत करता है, प्रागुक्ति करता है अपेक्षाकृत भारी कणों की, ताकि नीहारिकाओं का अपेक्षाकृत कालक्रम में बाद में बनना समझाया जा सके। इस सिद्धान्त के अनुसार कालानुक्रम में बड़े व वृहद झुण्ड व संरचनाएँ सृष्टि में राशीकरण या समूहन, एकत्रीकरण से बनीं। जो हो न्यूट्रीनो का द्रव्यमान सृष्टि के स्वरूप का निर्धारण करने में अहम भूमिका निभाता है।

●●

कविता

मानवता के व्यापारी

ब्रजेश कुमार शर्मा 'मधुकर'

कटता हुआ पेड़

मुझसे यों बोला—

मानव को जीवन हम देते,

फिर क्यों हमें काट वो लेते ?

हर गाली का जवाब

मैं प्रेम से ही देता हूँ।

वो मुझको पत्थर देते हैं,

फिर भी मुझसे फल लेते हैं।

मैं किसी से कुछ न लेता हूँ,

सबको ही बस, देता हूँ।

कुछ नासमझ मुझसे क्या चाहते हैं ?

कुल्हाड़ी से क्यों मुझे काटते हैं ?

मैं अपना जीवन खोता हूँ,

फिर भी उन्हे ईंधन देता हूँ।

ये मानवता के व्यापारी हैं,

जिन्हें जान से नहीं, पैसों से यारी है।

●●

347/भदादा बाग, गुलाबपुरा-311021 (राजस्थान)

अतिचालकों की विस्मयकारी दुनिया

मनोज दवे

आज के इस भौतिकवादी युग में मनुष्य विद्युत् ऊर्जा पर पूर्णतः निर्भर हो गया है। विद्युत् ऊर्जा ही एक ऐसा स्रोत है जो आधुनिक विश्व का संचालन करता है। यह ऊष्मा व प्रकाश दोनों को प्रदान करने की विशिष्ट क्षमता रखता है। इसमें यन्त्रों व उपकरणों के संचालन की प्रक्रिया होती है व भूमण्डलीय संचार सम्भव बनता है। यह विद्युत् ऊर्जा इलेक्ट्रॉनों के प्रवाह द्वारा चालन द्रव्य के माध्यम में उत्पन्न होती है। चालक में उपस्थित प्रतिरोध विद्युत् तकनीक में सीमाकारी कारक बन जाता है—ठीक उसी तरह जिस प्रकार संघर्षण यांत्रिकी मशीनों की क्षमता को सीमित करना है।

सन् 1911 में सर्वप्रथम एक ऐसे द्रव्य का पता लगा जिसमें विद्युत् प्रतिरोध नहीं होता। अतिचालक (Super Conductor) कहलाने वाले ऐसे द्रव्य प्रभावी तौर पर "संघर्षरहित" चालक हैं। यदि अति चालक के रूप में घूमती हुई विद्युत्धारा को शुरू करें तो यह सही तौर पर हमेशा घूमती रहेगी। यह शाश्वत् गतियन्त्र की विद्युत् तुल्यांक है। आरम्भ के अतिचालकों में एक बड़ी कमी यह थी कि वे अत्यन्त निम्न तापमान अर्थात् पूर्ण शून्य—273° सेल्सियस के कुछ अन्दर ही काम करते थे। इसे **O केल्विन** या **O के** (OK) कहा जाता है। कुछ वर्षों पूर्व तक अतिचालक जिस तापमान पर काम कर सकते थे उसकी उच्चतम सीमा 23 K. थी। इसका अर्थ यह है कि उत्पादन और संचयन की दृष्टि से एक मँहगें तरल द्रव-तरल हीलियम को शीतलक के रूप में इस्तेमाल करना पड़ता था।

वैसे अतिचालक तार उग्र चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न करने में समर्थ है। उसकी कुण्डली से चुम्बक पैदा किया जा सकता है। इन चुम्बकीय क्षेत्रों का प्रयोग चिकित्सा शरीर क्रमवीक्षकों और चुम्बकीय रेलगाड़ियों में किया जा रहा है, जिनकी गति 500 कि० मी० प्रति घण्टा तक पहुँच सकती है। ये गाड़ियाँ पटरी से कुछ सेन्टीमीटर ऊपर से तैरती हैं। जापान के पास फिलहाल ऐसी रेलगाड़ी का प्रारूप भी मौजूद है। अतिचालक द्रवों से निर्मित इलेट्रॉनिक यन्त्र का प्रयोग अत्यन्त ग्राहक संवेदक अथवा अतिस्वन कम्प्यूटरों के घटक के रूप में किया जा सकता है।

अप्रैल 1986 में जूरिख में आई० बी० एम० के लिए काम करने वाले **जार्ज बेन्डनोर्ज** और **अलेक्समूलर** नाम के दो अनुसन्धानकर्ताओं के हाथ लेन्थनम, ताँबा, बेरियम तथा ऑक्सीजन से निर्मित एक मृत्तिका शिल्प पर गया जो 35 के० पर अतिचालक बन जाता था। शीघ्र ही संयुक्त राज्य अमेरिका के वैज्ञानिकों ने उसी प्रकार का मृत्तिका-शिल्प खोज निकाला जो 98 के० के तापमान पर काम कर सकता था। यह बात बड़ी महत्वपूर्ण सिद्ध हुई, क्योंकि इन नये अतिचालक मृत्तिका-शिल्पों को तरल नाइट्रोजन से शीतल किया जा सकना था। तरल नाइट्रोजन हीलियम के मुकाबले कहीं सस्ता और सँभालने में कहीं आसान है।

47 श्रीनगर (मेन), इन्दौर-452001 (मध्यप्रदेश)

मृत्तिका-शिल्प ने सुपरचालकता के क्षेत्र में अचानक तहलका मचा दिया और समूचे विश्व के वैज्ञानिकों में इस बात की होड़ लग गई कि ऐसे मृत्तिका-शिल्प का पता लगाया जाय जिसमें उच्चतम तापमान पर काम करने के गुण विद्यमान हों। 1987 के शुरू में अमेरिकन फिजिकल सोसायटी की जल्दबाजी में बुलाई गई एक बैठक में न्यूयार्क के हिल्टन होटल के नाच घर में सैकड़ों वैज्ञानिक इकट्ठे हो गए और प्रातः छः बजे तक नई खोजों पर बहस करते रहे, जिसमें चुम्बक पर प्रतिस्थापित नये मृत्तिका शिल्पों के छोटे-छोटे टुकड़ों का एक असाधारण उदाहरण प्रस्तुत किया गया। इसमें एक अतिचालक किसी भी चुम्बकीय क्षेत्र को अपनी सतह में प्रविष्ट होने से प्रतिकर्षित करता है, जिसके कारण वह चुम्बक के ऊपर तैर पाता है। यह संवृत्ति मेसनर के चुम्बकीय प्रभाव का ही एक अनुप्रयोग है।

इस तरह नये द्रव्यों की क्षमता को बहुत शीघ्र पहचान लिया गया। उच्चतर से उच्चतर तापमान पर काम करने वाले अतिचालकों का ताँता लग गया। हर अनुसन्धान का लक्ष्य एक ऐसा अतिचालक प्राप्त करना था जिसे कमरे के तापमान पर सामान्य रूप में उपयोग में लाया जा सके। यदि इसमें सफलता मिल जाती तो विद्युत् प्रौद्योगिकी की दुनिया में एक चमत्कार हो जाता। लोग अति सक्षम यन्त्रों, प्रयास रहित द्रुतगामी रेलगाड़ियों और नये सुपर कम्प्यूटरों की दुनिया के बारे में आशावान हो गये। परन्तु आरम्भ में 100 से ऊपर के तापमान पर कार्य करने वाले अतिचालक अधिकांशतः अस्थिर थे और अपने अतिचालकता के गुणों को खो बैठते थे अथवा वास्तविक अतिचालन के प्रदर्शन में असमर्थ हो जाते थे। आज अतिचालक मृत्तिका-शिल्प का उच्चतम पुष्ट तापमान 125° के० है।

ये नये अतिचालक वस्तुतः कैसे काम करते हैं, इस बात ने भौतिकवेत्ताओं को अब भी उलझन में डाल रखा है। विद्युत् का चालन तभी हो पाता है जब इलेक्ट्रॉन स्वयं को अपने परमाणुओं से मुक्त कर लेते हैं और एक चालक के क्रिस्टल ढाँचे में चल सकते हैं। चालकों से होकर गुजरते समय इलेक्ट्रॉन परमाणुओं से टकराते हैं और प्रतिरोधक शक्ति पैदा करते हैं। पारस्परिक निम्नतापी अतिचालकों की व्यवस्था करने वाले सिद्धान्त के अनुसार इलेक्ट्रॉन किसी संघटन से बच सकता है, बशर्ते कि वह चालक के लैटिक्स में होने वाले कम्पन पर इस तरह चले जैसे समुद्र की लहरों पर सवारी करता हुआ एक छोटा जहाज, लेकिन ऐसा करने के लिए इलेक्ट्रॉनों को एक दूसरे के पीछे जोड़ों में उसी प्रकार घूमना पड़ता है, जिस प्रकार कार-दौड़ में दौड़ती हुई स्लिपस्ट्रीमिंग कार।

इस आधार पर तो यह पता चलता है कि अतिचालन की प्रक्रिया 20° के० से ऊपर सम्पन्न हो ही नहीं सकती। अतः इस नये द्रव्यों की व्याख्या करने के लिये सिद्धान्तकारों को नये सिरे से शुरुआत करनी पड़ी। वैसे अभी तक कोई निश्चित सिद्धान्त तो सामने नहीं आ सका, किन्तु एक सशक्त अनुसन्धान के परिणामानुसार अतिचालन इलेक्ट्रॉनों के घूमने से नहीं वरन् इलेक्ट्रॉन रिक्तिकाओं अथवा "छिद्रों" के घूमने से सम्पन्न होता है, जो चालक में एक परमाणु से दूसरे परमाणु पर उछालती रहती है।

इन नये द्रव्यों की खोज के साथ विशेष कठिनाई यह थी कि इसमें उन समस्याओं की कोई खास चर्चा नहीं थी, जिनका नियन्त्रण किसी उपयोगी अनुप्रयोग तक पहुँचने के पहले आवश्यक भी था। अतिचालक मृत्तिका-शिल्पों की उत्पत्ति एक चूर्ण के रूप में होती है, जिसको कुछ भुरभुरे ठोस पदार्थ में सम्पीडित किया जा सकता है। पदार्थ के इस भुरभुरेपन के कारण तार जैसी उपयोगी आकृतियों को पैदा करने में दिक्कत होती है। वैसे सूक्ष्म इलेक्ट्रॉनिक उद्योग की कुछ तकनीकों का प्रयोग करके इस क्षेत्र में कुछ सफलता प्राप्त की गई है। मृत्तिका शिल्पों को किसी और पदार्थ

पर पतली मृत्तिका-शिल्प के अवयवों के आधार पर धीरे-धीरे छिड़क दिया जाता है। जैसे-जैसे मृत्तिका शिल्प के अणु आधार पर गिरते हैं, वे अपने को मृत्तिका शिल्प की क्रिस्टलीय संरचना में ढाल लेते हैं।

किसी भी उपयोग अनुप्रयोग हेतु अतिचालक द्रव्य के निम्न तीन गुणों में से एक का प्रयोग किया जाना जरूरी है। सबसे पहला तो यह कि वे बिना प्रतिरोध के विद्युत्चालन कर सकें। इस गुणमान का सबसे अधिक उपयोग बिजलीघरों से उपभोक्ताओं तक ऊर्जा संचरण में होगा। आजकल ऊर्जा-उत्पादन के दस से बीस प्रतिशत तक की क्षति संरचना काल में हो जाती है। अतः इससे काफी हद तक ऊर्जा की बचत की जा सकती है। लेकिन इस बचत के लिये मृत्तिका शिल्प को तारों में ढालने की एक सक्षम प्रक्रिया खोजनी होगी। साथ ही ये नये पदार्थ अपनी अतिचालक क्षमताओं को खोये बगैर अधिक मात्रा में विद्युत् ऊर्जा उत्पन्न नहीं कर सकते या यूँ कहें कि अत्यधिक विद्युत्धारा को प्रवाहित नहीं कर सकते। सामान्य स्थिति में गणना के अनुमान से देखें तो अति चालकों में विद्युत्धारा के एक हजारवें अंश की धारा प्रवाहित करने की क्षमता आ पायी है।

अतिचालकों का दूसरा विशेष गुण उनकी अत्यन्त प्रबल चुम्बकीय क्षेत्रों को पैदा करने की क्षमता है। निम्नतापी अतिचालक पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र से दो लाख गुना प्रबल क्षेत्र पैदा कर सकते हैं। कोई विद्युत् चालक कुण्डली का रूप देने पर कुण्डली के चारों ओर प्रवाहित होने वाली विद्युत्धारा द्वारा अपने केन्द्र से गुजरने वाला एक चुम्बकीय क्षेत्र पैदा करता है। ऐसे प्रबल क्षेत्रों के पैदा होने का कारण एक अतिचालक की वह क्षमता है जिसके द्वारा वह कूण्डली के चारों ओर बिना किसी प्रयास के विद्युत्धारा का चालन करता है।

उच्चतापी अतिचालक चुम्बकों के प्रयोग से चिकित्सा क्रमवीक्षक तथा चुम्बकीय प्रेरणायुक्त रेलगाड़ियाँ अधिक सरलतापूर्वक तथा कम खर्च में बनाई जा सकती हैं। यही बात सुपर कंडक्टिंग कोडर नामक कण त्वरित्र के बारे में भी लागू हो सकती है। इत आधार पर अतिचालक द्रव्यों के प्रारम्भिक कणों के अध्ययन हेतु अमेरिका के टैक्सास राज्य में 88 किलोमीटर सुरंग के अन्दर प्रयोग की योजना बनाई जा रही है। त्वरित्र सशक्त चुम्बकों के उपयोग से कण पुंजों को एक गोलाकार पथ में मोड़ देते थे ताकि कण आपस में टकरा जायें और इस प्रक्रिया से उत्पन्न कण-खण्डों का विश्लेषण किया जा सके।

उपर्युक्त 'मेसनर प्रभाव' द्वारा एक चुम्बकीय क्षेत्र अतिचालक के अन्दर प्रविष्ट होने से रोकता है किन्तु सशक्त चुम्बकीय क्षेत्र इस प्रतिकर्षण का भेदन कर सकते हैं और जब ऐसा होता है तो इन पदार्थों की अतिचालन क्षमता का ह्रास हो जाता है। ये नये अतिचालक पदार्थ अब तक सशक्त क्षेत्रों के प्रभावों के प्रति अतिसंवेदनशील साबित हुए हैं। अतः इनके इस तरह के अनुप्रयोग की उपयोगिता सीमित हो सकती है।

अतिचालक पदार्थों का तीसरा गुण ऐसा है जो नये मृत्तिका शिल्पों के लिए सर्वाधिक सम्भावनापूर्ण प्रतीत होता है। यदि दो अतिचालकों को एक दूसरे के समीप स्पर्श के लिए अत्यन्त समीप ले आया जाय तो इलेक्ट्रॉन एक अतिचालक से दूसरे पर इस तरह उछाल मार सकते हैं जैसे कि वे दोनों एक दूसरे से सटे हुए हों और इस प्रक्रिया में विद्युत्धारा प्रवाहित हो सकती है। किन्तु अतिचालकों के इस अन्तराल के बीच प्रवाहित होने वाली यह विद्युत्धारा बाह्य विद्युत् क्षेत्रों और चुम्बकीय क्षेत्रों के प्रति अत्यन्त संवेदनशील होती है। अतः इस तथाकथित जोसेफसन-सन्धि का प्रयोग विद्युत् क्षेत्रों एवं चुम्बकीय क्षेत्रों के बहुत सही संवेदक अथवा ट्रांजिस्टर जैसे इलेक्ट्रॉनिक स्विच के रूप में किया जा सकता है।

जोसेफसन-सन्धि पर आधारित यन्त्रों का प्रयोग जैव भौतिकीवेत्ताओं द्वारा मस्तिष्क की गतिविधि से उत्पन्न सूक्ष्म विद्युत् क्षेत्रों के अध्ययन के लिये किया जा सकता है। उपग्रहों में इनका प्रयोग तारों और ग्रहों तक नीचे पृथ्वी की सतह को देखने वाले संसूचकों में किया जा सकता है। जोसेफसन-सन्धि पर आधारित कम्प्यूटर चिप अतिचालक पदार्थों के तारों द्वारा आपस में जोड़ दिये जाने पर परम्परागत कम्प्यूटरों से अधिक तीव्र होगी। भुरभुरे मृत्तिका शिल्पों से इन यन्त्रों के निर्माण की तकनीक पहले से ही विद्यमान है परन्तु विश्वसनीयता की अनेक समस्याओं का समाधान अभी तक नहीं हो पाया हैं। हम नये अतिचालकों का प्रयोग संवेदक तथा इलेक्ट्रॉनिकी जैसे उच्च प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्रयुक्त किये जाने की सम्भावना से इंकार नहीं कर सकते।

जब तक कोई और नाटकीय चमत्कार न हो या ऐसा कोई नया अतिचालकता का सिद्धान्त सामने न आ जाय, कमरे के तापमान पर अतिचालकों के उपयोग की सम्भावना तो बहुत दूर की बात है। फिर भी यह इस शताब्दी की सबसे प्रमुख वैज्ञानिक घटनाओं में से है। वास्तव में डी एन ए— DNA (वंशाणु) की खोज के बाद यह पहला विषय है जिसने विज्ञान की दुनिया को झकझोर दिया है। दरअसल इस नई खोज के कई लाभ हैं और इससे दुनिया की तस्वीर बदली जा सकती है। रेलें चुम्बक की गद्दी पर सैकड़ों मील प्रति घण्टे की रफ्तार से दौड़ सकती हैं। शक्तिशाली व मिनी कम्प्यूटर बनाये जा सकते हैं। विखण्डन के बजाय विलयन पर परमाणु रियेक्टर कार्य कर सकते हैं, आदि।

●●

फैराडे के दो सौवें जन्म वर्ष पर

महान वैज्ञानिक माइकेल फैराडे

अनिल वशिष्ठ

माइकेल फैराडे के जन्म के दो सौ वर्ष बाद भी ऐसा लगता है मानो यह कल ही की बात हो। विज्ञान के अध्ययन में या वैज्ञानिक वस्तुओं के प्रयोग करने पर इस महान वैज्ञानिक की अनायास ही याद ताजा हो जाती है। माइकेल फैराडे के नाम बहुत से आविष्कार लिखे हुए हैं। चाहे विद्युत् मोटर की बात हो या विद्युत् के गुणों की, टेलीफोन की बात हो या चुम्बकत्व गुणों की, कोई भी बात फैराडे द्वारा दिये गये सिद्धान्तों के बिना पूरी नहीं होती। माइकेल फैराडे ने दुनिया को यह दिखा दिया कि विज्ञान की उपलब्धियाँ पुस्तकों के मात्र ज्ञान से डिग्री हासिल कर प्राप्त नहीं की जाती बल्कि उसके लिए लगन, दृढ़ निश्चय, कठोर परिश्रम और साहस की जरूरत होती है। कोई सोच भी नहीं सकता था कि भारी गरीबी में पला एक प्राइमरी शिक्षा प्राप्त बालक, जिसको तेरह वर्ष की कोमल आयु से अखबार बेचने और जिल्दसाजी जैसे कार्यों के लिये विवश होना पड़ा हो, इतना महान वैज्ञानिक बनेगा। ऐसा ही महान वैज्ञानिक था माइकेल फैराडे जिसने विश्व को ट्रान्सफार्मर, विद्युत्-जनित्र (जनरेटर), इलेक्ट्रॉनिक वोट रिकार्डर दिये तथा विद्युत् लेपन जैसे असंख्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया।

पोस्ट-घोड़ा खाल, जिला-नैनीताल, पिन-263156 (उत्तर प्रदेश)

माइकेल फैराडे का जन्म बाइस सितम्बर सत्रह सौ इक्यानबे में न्यूविंगटन, सूरी के एक गरीब परिवार में हुआ। उनके पिता **जैम्स फैराडे** लुहार के रूप में थोड़ी बहुत जीविका कमाकर पाँच प्राणियों का खर्चा चलाते थे। उनके परिवार में माता-पिता के अतिरिक्त एक भाई और एक बहिन थे। माइकेल फैराडे का बचपन गरीबी में बीता। उन्हें अपने छोटे भाई **राइबो** की बहुत चिन्ता लगी रहती थी। उनकी माँ **मार्गरेट** एक धार्मिक किन्तु कर्तव्यपरायण महिला थीं, जो घर को गरीबी से उबारने के लिए मजदूरी किया करती थीं। घर की खराब आर्थिक स्थिति को देखते हुए फैराडे ने मात्र तेरह वर्ष की कोमल आयु में अखबार बेचना शुरू कर दिया। उसके बाद फैराडे ने अगले ही वर्ष लन्दन आकर जिल्दसाजी का काम शुरू किया। जिल्दसाजी ने फैराडे का जीवन ही बदल दिया क्योंकि फैराडे किताबों पर जिल्द चढ़ाने के अतिरिक्त उनका गहन अध्ययन भी करते थे।

फैराडे की विज्ञान में रुचि थी और वे स्वयं को विज्ञान में शिक्षित करना चाहते थे। इसी दृष्टिकोण से उन्होंने जिल्दसाजी के लिये आयी पुस्तकों का बिना किसी स्कूल में प्रवेश लिये ही गहन अध्ययन-चिन्तन प्रारम्भ किया और विद्युत्, चुम्बकत्व, परमाणु, विद्युत्-रासायनिकी तथा विद्युत्-चुम्बकत्व का ज्ञान अर्जित किया। इसी बीच सन् अट्ठारह सौ बारह में उन्हें लन्दन के रायल इन्स्टीट्यूट में तत्कालीन सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक **हम्फ्री डेवी** का भाषण सुनने का अवसर मिला। भाषण सुनकर फैराडे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने इस भाषण को पंक्तिबद्ध करके एक छोटी पुस्तक के रूप में हम्फ्री डेवी को दिखाया तो वह फैराडे से इतना प्रभावित हुए कि उन्हें अपना "कार्यशाला सहायक" बनाने का प्रस्ताव रख दिया। इक्कीस वर्ष की आयु में सर हम्फ्री डेवी: **निदेशक**, रायल इन्स्टीट्यूट के दिशानिर्देशन में कार्यशाला सहायक के रूप में फैराडे ने नियमबद्ध आधार पर वैज्ञानिक रहस्य सुलझाने शुरू किये और वर्ष 1825 में (अठारह सौ पच्चीस) इस संस्था के सर्वोच्च पद निदेशक, रायल इंस्टीट्यूट से सुभोभित किये गये। यह सब माइकेल फैराडे ने तब कर दिखाया जबकि उन्होंने विज्ञान की स्कूली शिक्षा पूरी नहीं की थी, और तथ्यों को गणितीय आधार के स्थान पर उन्होंने अन्तर्मन का सहारा लिया। प्रारम्भ में उनके वैज्ञानिक तत्वों को स्वीकृत नहीं किया गया, किन्तु धीरे-धीरे उनके सिद्धान्त इतने लोकप्रिय हुए कि माइकेल फैराडे की अनुपस्थिति में आज तथ्यों के आधार पर ऐसा प्रतीत ही नहीं होता कि फैराडे हमारे बीच नहीं है। फैराडे आत्मस्वाभिमानी थे और इसका उन्हें भारी मूल्य चुकाना पड़ा। वर्ष 1850 (अठारह सौ पचास) के क्रिसमस युद्ध के दौरान उन्हें पद और धन के प्रलोभन के साथ विषैले रसायन बनाने के लिए कहा गया। इस अमानवीय प्रस्ताव को फैराडे ने ठुकरा दिया। ग्रेट ब्रिटेन की **महारानी एलिजाबेथ** तथा **राजकुमार**, क्रिसमस के अवसर पर आयोजित होने वाली "वैज्ञानिक लेख माला" में इनका भाषण सुनने प्रतिवर्ष आते थे। महारानी के महल में फैराडे को आने-जाने की खुली अनुमति थी, किन्तु चापलूस प्रवृत्ति न होने के कारण उन्होंने इसका कोई लाभ नहीं उठाया। उन्होंने महारानी द्वारा "सर" की उपाधि सुशोभित करने के प्रस्ताव को टाल दिया। इतना ही नहीं उन्होंने "रायल फेलोशिप" को भी तिलांजलि दे दी। प्रसिद्ध वैज्ञानिक **आइंस्टाइन** ने फैराडे को **सर आइजक न्यूटन**, **गैलीलियो** तथा **मैक्सवेल** के समतुल्य कहा है। विद्युत् रासायनिक विज्ञान में "एफ" फैराडे के नाम पर उनके सम्मान में दी गई राशि है। फैराडे के नाम भौतिकी विज्ञान और रासायनिक विज्ञान के अनेक आविष्कार, पेटेन्ट तथा वैज्ञानिक विवेचनाएँ हैं, जिनके माध्यम से वह आजभी हमारे बीच हैं। माइकेल फैराडे को सन् अठारह सौ पचपन में 'स्मृति-नाश' हो गया। स्मृति खोने के बाद वे ग्यारह वर्ष जीवित रहे और अठारह सौ सरसठ में विज्ञान के इस महान पुजारी की मृत्यु हो गयी। अपने द्वारा दिये गये सैकड़ों सिद्धान्त, खोज व तर्कों के माध्यम से माइकेल फैराडे आज भी हमारे बीच हैं।

माइकेल फेराडे को प्रथम तड़ित चालक विद्युत् ट्रान्सफार्मर तथा प्रथम विद्युत् जनित्र (इलेक्ट्रॉनिक जनरेटर) बनाने का श्रेय दिया जाता है। इलेक्ट्रिक वोट रिकार्डर उनका पहला तथा लालटेन (इन्केन्डिसेन्ट लैम्प) अन्तिम पेटेन्ट में आते हैं। रसायन विज्ञान के क्षेत्र में माइकेल फैराडे की उपलब्धियों को कम नहीं आँका जा सकता। रसायन विज्ञान के क्षेत्र उन्होंने कार्बनडाइऑक्साइड, हाइड्रोजन-सल्फाइड, हाइड्रोजन ब्रोमाइड तथा क्लोरीन गैसों को द्रवित किया। बैन्जीन कार्बनिक रसायन की खोज तथा अवयवों का पता भी पहली बार फैराडे ने ही लगाया। मैग्नीशियम तत्व के उत्पादन तथा नष्ट होने से बचाने के उपाय फैराडे ने सुझाये। स्वर्ण की कोलाइड अवस्था तथा वैद्युत् रासायनिक नियम भी उन्हीं की देन थे। भौतिक विज्ञान विषय पर उनका सर्वाधिक चिन्तन रहा है। इस विषय पर उन्होंने विद्युत् व चुम्बक से सम्बन्धित सैकड़ों रहस्यों से पहली बार परदा उठाया। विद्युत् का चुम्बकीय प्रभाव और चुम्गकीय क्षेत्र में विद्युत् प्रभाव को लेकर उनका सूक्ष्म अध्ययन था व इस विषय पर उन्होंने सैकड़ों सिद्धान्त व तर्क प्रतिपादित किये हैं। टेलीफोन प्रणाली में सुधार, बेतार प्रणाली में सुधार, विद्युत् चुम्बकीय उत्प्रेरण, चुम्बकीय क्षेत्र में ध्रुवीय प्रकाश का दिशा परिवर्तन आदि पर दिये गये सिद्धान्त भुलाये नहीं जा सकते। ट्रान्सफार्मर तथा विद्युत् जनित्र (इलैक्ट्रिक जनरेटर) नित्य-प्रति काम आने वाले फैराडे के ऐसे आविष्कार हैं, जिन्हें देखकर माइकेल फैराडे को भुला पाना असम्भव है। "फैराडे शटर" तथा विद्युत्-रासायनिक नियमों की इकाई "फैराडे" या "एफ" उनके प्रति वैज्ञानिकों की आस्था और श्रद्धा का प्रतीक है। हमें ऐसे महान वैज्ञानिक से यह सीख अवश्य लेनी चाहिये कि वैज्ञानिक बनने के लिये पुस्तकीय ज्ञान इतना आवश्यक नहीं जितना कि कठिन परिश्रम, अध्ययन तथा समर्पण की भावना आवश्यक है।

●●

जिन्दगी के लिए जरूरी है मिठास

डॉ० जगदीप सक्सेना

केवल चीनी में मिठास नहीं है, शुद्ध फलों से लेकर दूध और अनाजों तक में मिठास है। कुछ सब्जियों में भी मिठास घुली है। मिठास के नाना रूप हैं, प्रस्तुत है जिन्दगी के लिये जरूरी मिठास के भेद खोलता आलेख।

क्या बिना मिठास के हमारी जिन्दगी चल सकती है? बिल्कुल नहीं। अगर जुबान में मिठास न होगी तो सामाजिक जीवन दुष्कर हो जायेगा और अगर खान-पान में मिठास नहीं होगी तो जिन्दगी ठप्प हो जायेगी। कारण, शरीर को हरकत देने वाली, ऊर्जा देने वाली ताकत मिठास में ही छिपी है। पर, यहाँ मिठास का मतलब केवल चीनी नहीं है। यह वह मिठास है, जो बहुत सी प्राकृतिक चीजों में मिलती है।

गन्ने या चुकन्दर से बनने वाली चीनी को वैज्ञानिक भाषा में "सुक्रोस" कहा जाता है। यह जटिल शर्करा है। जब हम चीनी या चीनी से बनी चीजें खाते हैं तो आँत इसे सरल शर्करा में बदल देती है। इसे "ग्लूकोस" कहा

सम्पर्क सूत्र : डी-720 सरस्वती विहार, दिल्ली-110034

जाता है। शरीर की करोड़ों कोशिकाएँ इसे सीधे जलाकर ऊर्जा प्राप्त करती है। अगर शरीर में जरूरत से ज्यादा शर्करा आ जाये तो शरीर उसे जिगर (लिवर) में इकट्ठा कर लेता है, ग्लाइकोजन के रूप में। अगर और ज्यादा शर्करा हो जाये तो वसा कोशिकाएँ इसे वसा में बदल देती हैं यानी शरीर पर चर्बी जमा होने लगती है। इसीलिए मोटाप घटाने के लिये मिठास से परहेज करने को कहा जाता है।

फलों की मिठास को वैज्ञानिकों ने "फ्रक्टोस" का नाम दिया है। जिसे हम फीका दूध कहते हैं उसमें भी मिठास होती है। दूध की मिठास को "लैक्टोस" कहा जाता है। गेहूँ, चावल समेत अनेक अनाजों में भी मिठास होती है और इसका अनुभव करना हो तो रोटी को खूब चबाइये। इसे वैज्ञानिक "माल्टोस" कहते हैं और आलू में भी यही शर्करा होती हैं। शहद में साधारण शर्करा होती है। फल खाने से शर्करा के साथ रेशे भी मिलते हैं। शरीर में इन सभी शर्कराओं के साथ वही सलूक होता है, जो गन्ने वाली चीनी के साथ। पर बेहतर यह होगा कि हम ऐसी शर्करा का सेवन करें जिसके साथ रेशे, खनिज तत्व और विटामिन भी मिलें।

वैज्ञानिक जाँच-पड़ताल से पता चला है कि मीठे बिस्कुटों में कुल शर्कराओं की मात्रा लगभग 23 फीसदी होती है, जिसमें से 19 फीसदी सुक्रोस होती है। दूध में लैक्टोफ की मात्रा लगभग 5 फीसदी पाई गई है। कार्बोनिटेड शीतल पेयों में शर्करा की मात्रा 12 फीसदी होती है। शहद में 80 फीसदी शर्करा पायी गयी है। बच्चों के "मिल्क चाकलेट" में कोई 59 फीसदी शर्करा होती है, जिसमें से 52 फीसदी सुक्रोस है। आइसक्रीम में आमतौर पर शर्करा की मात्रा 23 फीसदी पाई गई है, जिसमें से 15 फीसदी सुक्रोस है। शर्करा की जरूरत पूरी करने के लिये क्या खाना चाहिए ? यह निर्भर करता है कि आपने शर्करायुक्त पदार्थ कितना खाया। अगर कम शर्करा वाला पदार्थ ज्यादा खाया जाय तो शरीर को ज्यादा शर्करा मिलती है।

शर्करा की जरूरत पूरी करने के लिये सीधी चीनी खाना नुकसानदेह है। यह जरूरत हमेशा फलों, दूध आदि से पूरी करनी चाहिए। ज्यादा चीनी खाने और दिल के रोगों के बीच रिश्ते के संकेत मिल चुके हैं। पर ज्यादा चीनी खाने से बच्चों के दाँत में कीड़ा लगने की बात गलत है। दरअसल दाँत में कीड़े लगते ही नहीं हैं। अगर मुँह में सुक्रोस के अलावा किसी और तरह की शर्करा भी मौजूद हो तो जीवाणु (बैक्टीरिया) उसका किण्वन (फार्मेंटेशन) करके उसे अम्ल में बदल देते हैं। यही अम्ल दाँतों के "इनेमल" को नष्ट कर देता है, तब ऐसा लगता है जैसे दाँत में कीड़े लग गये हैं। ऐसा होने के लिये दूध, फलों आदि की शर्करा भी काफी है।

चीनी या शर्करा के साथ जुड़ा सबसे खतरनाक नाम है—मधुमेह (डायबिटीज) का। इसका मुख्य कारण ज्यादा चीनी का सेवन नहीं बल्कि एक हार्मोन की कमी है। खून में शर्करा की मात्रा को उपयुक्त स्तर पर बनाये रखने की जिम्मेदारी "पैंक्रियास" में बनने वाले एक हार्मोन इंसुलिन पर है। कुछ अज्ञात कारणों से कभी-कभी यह हार्मोन बनना बन्द हो जाता है या कम बनने लगता है, तभी खून में शर्करा की मात्रा बढ़ जाती है। पेशाब से भी शर्करा बाहर आती है। ऐसी हालत में रक्तचाप बढ़ता है, घाव देर से भरते हैं और कभी-कभी बेहोशी भी छा जाती है। मधुमेह को काबू में रखने के लिए नियमित रूप से इंसुलिन का इंजेक्शन लगवाना पड़ता है और सीधे चीनी की मनाही होती है। पर मधुमेह के रोगी दूध, फल वगैरह ले सकते हैं, क्योंकि ऐसी शर्करा शरीर को धीरे-धीरे मिलती है।

अगर शरीर द्वारा ग्लूकोस अवशोषण में लगने वाले समय को सौ फीसदी माना जाये तो गाजर, शहद, चीनी, सेब और आइसक्रीम की शर्करा क्रमश: 92, 87, 81, 39 और 36 फीसदी समय में अवशोषित होती है। इसलिये डायबिटीज के रोगियों को ऐसी ही चीजें खाने की सलाह दी जाती है। इससे आदमी के शरीर की जरूरत तो पूरी हो जाती है, पर जीभ नहीं मानती। आदमी स्वाद के लिये चीनी खाना चाहता है। ऐसे लोगों की जरूरत पूरी करने के लिये मिठास देने वाले रसायन तैयार किये गये हैं। आज बाजार में इनकी गोलियाँ, पाउडर या द्रव आम मिलते हैं। ऐसे रसायन है सोडियम साइक्लामेट, सैकरीन या सोडियम ग्लूसाइड, कैल्सियम साइक्लामेट, कैल्सियम लैक्टेट, सॉर्बिटॉल, मैनिटॉल आदि।

पर इन कृत्रिम मिठासों का सेहत पर अच्छा असर नहीं पड़ता। इसलिये इनका सेवन भी एक निश्चित मात्रा में ही करना चाहिये। देखा गया है कि अगर सॉर्बिटॉल और मैनिटॉल का ज्यादा सेवन किया जाये तो डायरिया हो जाता है। इन कृत्रिम रसायनों से मूत्राशय का कैंसर होते भी देखा गया है। यह भी देखा गया है कि सैकरीन खाने के बाद कड़वेपन का अहसास भी होता है। यानी मिठास जहर नहीं है, जहर है इसकी नकल या कृत्रिम मिठास। पर यह याद रखना चाहिये कि अति हर चीज की बुरी होती है।

●●

विज्ञान वार्ता

डॉ० अरुण आर्य

(1) मछलियाँ जो मछलियाँ नहीं हैं

मछलियाँ संख्या की दृष्टि से जमीन पर पाये जाने वाले जन्तुओं से कहीं अधिक हैं। मछलियों के नाम उनकी संरचना, वस्तुओं से उनकी समानता, उनके आवास, स्वाद या सुगन्ध के आधार पर रखे गये हैं। यथा कैट फिश, डॉग फिश, रैट फिश, फ्राग फिश, टोड फिश, लिजार्ड फिश, स्क्वैरल फिश आदि-आदि। आकार के अनुसार सॉ फिश, स्वार्ड फिश, नाइफ फिश, स्पेड फिश, आवास के अनुसार सैन्ड फिश, स्टोनफिश, रॉक फिश, मड फिश। इसके अतिरिक्त मिल्क फिश, बटर और मैंगो फिश, आइस फिश, स्वीट फिश और तो और एन्जेल (देवदूत) फिश, डॉक्टर फिश आदि-आदि अनेक नाम हैं जिन्हें गिनायें तो एक लम्बी लिस्ट होगी। इनके साथ ही कुछ ऐसी फिशेज हैं जो वस्तुतः मछलियाँ (Pisces) नहीं है, जैसे व्हेल मछली, जेली फिश, सिल्वर फिश, स्टार फिश और कटल फिश आदि। इनमें से कुछ का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है—

(अ) व्हेल और डॉलफिन

ये मछलियाँ नहीं बल्कि स्तनपायी समुदाय के यूथीरिया समूह के सिटेसिया (Cetacea) वर्ग के प्राणी हैं। इनका शरीर सूच्याकार (Spindle-shaped), सिर लम्बा एवं नुकीला तथा सीधे शरीर से जुड़ा होता है (कोई गर्दन

प्रवक्ता, वनस्पति विज्ञान विभाग, विज्ञान संकाय, म० स० विश्वविद्यालय, बड़ौदा-390002 (गुजरात)

नहीं होती) । अगली टाँगें पतवार के समान, सभी अँगुलियाँ जुड़ी होती हैं, कोई नाखून नहीं होते। 2 से 40 दाँत, एक नाक, कान के छोटे-छोटे छिद्र ।

स्पर्म व्हेल (*Physter catodon*) 60 फीट लम्बी, सिर चौकोर, जहाँ से स्पर्म तेल निकलता है जो एक उपयोगी स्नेहक (Lubricant) है और सुगन्धियों (Perfumes) में उपयोग किया जाता है। सामान्य डॉलफिन (*Delphinus delphis*) 7 फीट लम्बा प्राणी है। यह एक बहुत समझदार प्राणी है और इसको थोड़े से प्रयास द्वारा ट्रेनिंग देकर अनेक करतब दिखाने योग्य बनाया गया है।

व्हेल का मुख्य भोजन **डायटम्स** (*Diatoms*), एक काई है, परन्तु यह अनेक छोटी मछलियों यहाँ तक कि स्वयं छोटी व्हेल को अपना भोजन बना सकती है।

(ब) जेली फिश

जेली फिश (*Physalia physalis*) मछली नहीं बल्कि सीलेन्ट्रेटा (Coelenterata) समुदाय के हाइड्रोजोआ वर्ग का जन्तु है। इसे 'पोर्तगीज मैन ऑव वार' भी कहते हैं। इसमें हवा से भरा एक ब्लैडर होता है जो पोर्तगीज युद्ध-पोत के पाल जैसा दिखाई पड़ता है, जिसके कारण इसका यह नाम पड़ा। जेली फिश अपने डंकों के कारण प्रसिद्ध है। यह मनुष्यों में भयानक घाव कर सकता है। यह विभिन्न रंगों में मिलता है। इसमें हड्डियाँ नहीं होती, इसमें न तो आँखें होती हैं न कान और हाथ। वस्तुतः यह एक जीव न होकर कई छोटे-छोटे जन्तुओं जिन्हें पॉलिप्स (Polyps(कहते हैं, का एक समूह है।

डंक के बावजूद यह कई जानवरों का अच्छा भोजन है जैसे कछुआ। जमीन पर आने पर इसके टेन्टेकल्स सूख जाते हैं परन्तु इसकी डंक कोशाये (Sting Cells) फिर भी जीवित रहती हैं और मनुष्य की खाल से छूने पर जलने जैसा मिशान बना देती हैं। इन कोशाओं को निमैटोसिस्ट्स कहते हैं। इनकी मदद से यह अपना शिकार पकड़ता है। यह अपने आकार के बराबर की मछलियाँ पकड़ सकता है। निमैटोसिस्ट्स बहुत जहरीले होते हैं और यह श्वसन तथा तन्त्रिका तन्त्र को नुकसान पहुँचाकर जन्तु को मृत्यु के मुँह तक पहुँचा सकते हैं।

जेली फिश सहभोजी (Commensal) का एक अच्छा उदाहरण है। इसके साथ **नॉमियस** (Nomeus) नामक मछली रहती है, जो इसके द्वारा पकड़े गये भोजन को ग्रहण करती है। कभी-कभी यह जेली फिश के टेन्टेकल्स को भी खा जाती है। जेली फिश के टेन्टेकल्स में उपस्थित निमैटोसिस्ट इसको कोई नुकसान नहीं पहुँचाते। परन्तु जब यह घायल होती है तो अपने आश्रयदाता जेलीफिश की शिकार हो जाती है।

(स) सिल्बर फिश

यह एक छोटा, मुलायम, चमकदार, सिल्वरी सफेद मछली के आकार का कीड़ा है, जिसका नाम है लेपिस्मा (*Lepisma*)। यह घरों में पाया जाने वाला आम कीड़ा है, जो नम अँधेरे स्थान में रहना पसन्द करता है, जैसे पुस्तकों के अन्दर, फोटुओं के फ्रेम के अन्दर, दीवाल पेपर के अन्दर, केलेन्डरों के पीछे और कपड़ों में आदि-आदि। यह कपड़ों में लगने वाले माड (Starch), पुस्तकों की गोंद और लेई को खाता है। इसीलिये कहा जाता है कि यदि आपको कपड़े सुरक्षित रखने हैं तो उनमें माड़ लगा कर न रखें।

(द) **स्टार फिश**

स्टार फिश एक समुद्री जीव है। मिश्रवासिओं ने इसे नाम दिया एस्टर (*Aster*) जिसका अर्थ है सितारा। चूंकि ये पानी में पाये जाते हैं लोगों ने इन्हें नाम दिया स्टार फिश। यह मछली न होकर अकशेरुकी वर्ग के इकाइनोडरमेटा (Echinodermata) समूह का प्राणी है।

स्टारफिश सभी समुद्रों में विभिन्न गहराई में पाई जाती है। साधारण तौर पर यह पंचभुजी प्राणी है जिसमें एक केन्द्रीय प्लेट और 5 भुजायें होती हैं। कुछ स्टार फिशेज 1 या 2 सेमी०, ज्यादातर 10 से 30 सेमी० और कुछ 50 से 60 सेमी० बड़ी बड़ी होती हैं। इनका रंग पीला या चमकदार होता है, कुछ का रंग लाल, नारंगी, नीला, हरा, भूरा और स्लेटी होता है दो या कई रंग की स्टारफिश भी हो सकती है। इसके रंग ऊपर्हे (Aboral) की सतह पर होते हैं, नीचे की ओर का रंग फीका होता है।

यह ऑयस्टर (Oyster) को बड़े चाव से खाती है, इसलिये भारत में मोती उत्पादन के लिये एक अभिशाप है। यह धूप से बचती है और किसी कोने में छिप जाती है। इसमें जनन की बहुत शक्ति है, यदि शरीर का कोई भाग टूट जाता है तो एक नई स्टार फिश को जन्म देता है।

(य) **कटल फिश**

कटल फिश (*Sepia*) एक मछली नहीं वरन समुद्री शंखकुल (Mollusca) समुदाय का प्राणी है जो सारे संसार के समुद्रों में छिछले पानी में पाया जाता है। इसका शरीर द्विसम्मिति (bilaterally symmetrical) चपटा, धड़, गर्दन और सिर में विभक्त होता है। सिर में एक जोड़ी बड़ी आँखें और मुख को घेरे हुए 5 जोडी भुजायें होती हैं। 4 जोड़ी भुजायें छोटी और एक जोड़ी बड़ी होती है। इन भुजाओं में अन्दर की ओर चूषक होते हैं। कुछ कटल फिशें 18 मीटर लम्बी होती हैं, जो कि व्हेल मछलियों का भोजन बनती हैं।

इनमें एक विशेष प्रकार का बचाव उपकरण इन्क ग्रन्थियों (Ink glands) के रूप में होता है। जब कोई जानवर खतरे में होता है तो वह इस ग्रन्थि से स्राव बाहर फेंकता है, जिससे पानी गंदला हो जाता है, और प्राणी इस पानी में छिपकर अपना बचाव करता है। इसमें कटल बोन होती है जो पक्षियों की चोंच तेज करने के काम आती है।

(2) **कीटों के परजीवी कवक**

जाइगोमाइकोटीना (Zygomycotina) ग्रुप के एन्टोमाफ्थोरेल्स गण के सदस्य मुख्यत: कीटों (insects) पर परजीवी के रूप में पाये जाते हैं।

इनमें कवक जाल पूर्णरूप से विकसित नहीं होता, कवक जाल छोटे-छोटे खण्डों में विभक्त होता है जिन्हें कवक तन्तु-काय (hyphal bodies) कहते हैं। कवक तन्तु काय एक या बहुकोशीय होते हैं। इनमें गुणन (multiplication), मुकुलन या विखण्डन (budding or fission) द्वारा होता है। यह कवक तन्तुकाय नयी संतातियों को जन्म देते हैं और इस प्रकार इन जातिओं की वृद्धि वर्धी जनन द्वारा होती है। कुछ जातियाँ राइज्वायडल माइसीलियम (Rhizoidal mycelium) उत्पन्न करती है, जिनकी सहायता से वे कीटों के शरीर पर स्थित रहती हैं।

अलैंगिक जनन कोनिडियम द्वारा होता है। कोनिडियम मुग्दर के आकार के बीजाणुधानीधर पर उत्पन्न होता है। लैंगिक जनन युग्मकधानी (gametangium) के संयोजन से होता है, जो कवक तन्तु के शिखर पर उत्पन्न होती है। इन कवकों पर प्रमुख शोध भारतीय वैज्ञानिक डॉ० थिरुमलाचार ने किया है।

(अ) **एन्टोमाफ्थोरा** (*Entomophthora*)

यह एक महत्वपूर्ण वंश है, जिसमें लगभग 100 जातियाँ सम्मिलिल हैं। ये जातियाँ अधिक्रतर दीमकों (termites) और एफिड्स (aphids) पर परजीवी के रूप में पायी जाती हैं। कोनिडियम का अंकुरण जनन नलिका द्वारा होता है जो कीटो के बहि कंकाल (eko-skeleton) या ग्रसिका (oesophagus) में प्रवेश कर जाती है। कृत्रिम रूप से इस कवक को कीड़ों के निचोड़ पर उगाया जा सकता है।

ए० मस्की (*Entomophthora muscae*)

गृहमक्खी पर पाया जाने वाला परजीवी है। यह मक्खियों का कालरा उत्पन्न करता है। इसी कारण कभी-कभी खिड़की के शीशे पर मृत मक्खियाँ चिपकी रहती हैं, जिनके चारों ओर कवक की वृद्धि श्वेत वलयों के रूप में दिखाई देती है। इन वलयों में कोनिडियम होते हैं, जो कीट के शरीर पर चिपके होते हैं। कोनिडियमधर शाखविहीन होते हैं और कीट के मृत शरीर में भरे कवकजाल से निकलते हैं। यह वहिकंकाल के खण्डों के बीच के रिक्त स्थानों से उत्पन्न होते हैं।

(ब) **मेसोस्पसोरा** (*Massopsora*)

यह कशेरुकी प्राणियों में परजीवी है। कवकतन्तुकाय (hyphal bodies) उत्पन्न होती हैं। कोनिडिया शरीर के अन्दर उत्पन्न होते हैं और उनका निष्क्रिय विसर्जन या पैसिव डिसचार्ज होता है। यह कवक कुछ हानि-कारक कीटों पर परजीवी के रूप में पाये जाते हैं, अत: इनका प्रयोग इन हानिकारक कीटों की जैविक रोकथाम में भी किया जा सकता है, जैसे एन्टोमोफ्थोरा की एक जाति **रोपेलोसाइफम मेडिस** (*Ropalosiphum maidis*) पर परजीवी के रूप में पाई जाती है। यह कीट अनेक फसलों में महत्वपूर्ण विषाणु रोग फैलाता है।

कृषि वि० वि० कल्याणी (प० बंगाल) के तीन वैज्ञानिकों डॉ० **राय**, डॉ० **मुकर्जी** एवं **डॉ० मुखोपाध्याय** ने देखा कि सन्तरे के पेड़ पर अनेक कीड़ों के साथ पस्पल स्केल कीड़ा (*Lapidosaphes beckii Newm*) लगता है। प्राकृतिक रूप से इस कीड़े का नियन्त्रण एस्करसोनिया एल्यूरॉडिस (*Aschorsonia aleyrodis* Webber) नामक कवक द्वारा होता है। यह कवक पत्ती तथा तने पर कीड़े के शरीर के चारों ओर ऊँची दीवार-सी बना देता है। प्रयोगशाला में कृत्रिम रूप से इसके बीजाणुओं (spores) को छिड़क कर कीड़ों की संख्या में काफी कमी पायी गई है। विविध प्रयोग अभी प्रगति पर हैं।

3. खर-पतवारों का जैविक नियन्त्रण

जैविक नियन्त्रण का विचार कोई नया नहीं है। चीनी लोगों ने नींबू के कीड़ों को रोकने में चींटियों (*Oecophylla smaragdina*) का प्रयोग किया। अरब के खजूर उत्पादन करने वालों ने पास के पहाड़ों से ओयेसिस

(Oases) में परभक्षी (predatry) चींटियों को इकट्ठा किया जिन्होंने फाइटोफैगस (Phytophagus) चींटिओं का अन्त किया। 1762 में 'मैना' नामक चिड़िया भारत से मारीशस गई, जहाँ उसने लाल टिड्डों (red locusts) को नियन्त्रित किया। यह एक प्राकृतिक शत्रु का एक देश से दूसरे देश को गमन था। कीड़े खरपतवारों के विनाश में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। इन खरपतवारों का यद्यपि पूर्ण विनाश सम्भव नहीं हुआ है तो भी इस दिशा में प्रयास किये जा रहे हैं।

बगीचों में सुन्दरता के लिए लगाया जाने वाला नागफनी एक विश्वव्यापी खर-पपवार पादप है। इसकी रोकथाम में **कैक्टोब्लास्टिस कैक्टोरस** (*Cactoblastis cactorus*) ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इस मॉथ के छोटे-छोटे बच्चे (larvae) पेड़ को छेद करके खाते हैं, जिससे उनमें जीवाणुओं और कवको का विकास होता है जो उसे पूरा समाप्त कर देते हैं। इस कीड़े के प्रयोग से आस्ट्रेलिया, अमेरिका, मेक्सिको और अर्जेन्टाइना में लाखों एकड़ भूमि को उपजाऊ बनाया गया है।

सूरजमुखी कुल का **सेन्सिओ जैकोबी** (*Senecio jacobaea*) केलीफोर्निया में एक खतरनाक खरपतवार है। इसकी रोकथाम सिनाबा मॉथ (*Tyrea jacobaea*) से की गई है।

वर्बीनेसी कुल का **लेन्टाना** (*Lantana camara*) सारे संसार में एक खतरनाक जहरीली झाड़ी के रूप में उगता है। **परकिन** और **स्वेजी** ने 1902 और 1924 में हवाई द्वीप में **प्लूसिया** (*Plusia verticillata*) और **टॉरट्रीसिड** कीड़ों (torticid moth) का प्रयोग किया। ये कीड़े फूलों के डंठलों को छेद देते हैं और फूलों तथा फलों के आधार को खा जाते हैं। इसी प्रकार **एग्रोमाइजा लैण्टाना** (*Agromyza lantana*) नामक मक्खी के बच्चे फलों को खा जाते हैं या उन्हें सुखा देते हैं, जिससे चिड़ियाँ उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान तक नहीं ले जातीं। लेन्टाना बग (*Teleonemia scrupulosa*), जो इस झाड़ी को रोकने का एक समय सबसे अच्छा साधन था, अब उतना प्रभावकारी नहीं रहा।

भारत में जलकुम्भी (वाटर हेसिन्थ—*Eichhornia crisspes*) के विस्तार को रोकने के लिए लैटिन अमेरिका से **नियोकेटिन** (*Neochetin olchhorniae*) नामक कीड़े का आयात किया गया (जयनाथ, 1987)। इसकी मादा, पत्तियों के डंठल में अण्डे देती है और वच्चे उसको खा जाते हैं। प्रौढ़ कीड़े पत्तियों को खाते हैं और इस प्रकार सम्पूर्ण पौधा समाप्त हो जाता है।

आज जहाँ हम दिन-प्रतिदिन हवा, पानी एवं भूमि के प्रदूषण के खतरो से जूझ रहे हैं, खरपतवारों का जैविक नियन्त्रण एक महत्वपूर्ण उपलब्धि होगी।

● ●

विज्ञान समाचार

वीरेन्द्र वर्मा

(1) कहाँ दबे हुए हैं कार्बन डाइऑक्साइड के गोदाम ?

विज्ञानियों का अनुमान है कि मानव द्वारा काम में लिए गए कोयला व गैस जैसे जीव-अवशेषी ईंधनों, जंगलों को काटने व जलाने से तकरीबन छः हजार मीटर टन कार्बन, ग्रीनहाउस गैस कार्बनडाइऑक्साइड के रूप में, हमारे वायुमंडल में दाखिल हो रहा है। आश्चर्य यह है कि इस गैस की आधी से ज्यादा मात्रा वायुमंडल से रहस्यमय तरीके से गायब हो रही है। कहाँ जमा होते जा रहे हैं कार्बनडाइऑक्साइड के ये भंडार ? ऐसा कौन सा नाबदान है, गुप्त हौदी है, विशाल सिंक है जहाँ यह कार्बनडाइऑक्साइड दबी पड़ी हैं ? इस पहेली को सुलझा लेना वायुमंडलीय शोध के राष्ट्रीय केन्द्र, बोलडर कॉलॉरॉडो से सम्बद्ध शोध विज्ञानी ली-क्लाइनर के शब्दों में मात्र एक वैज्ञानिक जिज्ञासा को शान्त कर लेने तक सीमित नहीं है।

विश्वव्यापी तापन-ग्लोबल वार्मिंग—की प्रागुक्ति कर पाने के लिए भी कार्बन डाइऑक्साइड के अन्यान्य स्रोतों व नाबदानों (कार्बनदानों) की समझ जरूरी है, शिनाख्त जरूरी है।

प्रकृति का कौन सा बल, कौन सी प्रक्रिया इसमें छिपी पड़ी कार्बनडाइऑक्साइड की विशाल मात्रा को वायुमंडल में लावे की तरह उड़ेल देगी, कोई नहीं जानता। आशंका यह है कि ऐसा सम्भाव्य है, हो सकता हैं तथा विश्वव्यापी तापन के लिए बदनाम यह गैस पृथ्वी पर तबाही का कारण बन सकती है।

कहीं यह अपार राशि उत्तरी गोलार्द्ध के वन-प्रान्तरों, खासकर कच्छी पांसों व दलदली इलाकों में तो नहीं दबी पड़ी ??? कहीं दुनिया भर के समुन्दर कार्बनडाइऑक्साइड के इन गोदामों को अपने सीने में तो नहीं दबाये पड़े हैं ? यूँ समुन्दर कार्बनडाइऑक्साइड के ज्ञात 'सिंक' रहे हैं, प्राकृतिक चक्रों के तहत वायुमंडल व समुन्दरों के बीच कार्बनडाइऑक्साइड का विनिमय होता रहता है। खतरा बस यही है कहीं पृथ्वी के 'ग्रीन हाउस' बन जाने से कार्बन-डाइऑक्साइड के ये गोदाम किसी ज्वालामुखी की तरह न फट पड़ें, इनमें आया अप्रत्याशित उफान हमारे अपने क्रियाकलापों से कहीं प्राकृतिक चक्रों को नष्ट करके हमें घोर संकट में न डाल दें। हमारी कोई भी गलती समुन्दरों के इन 'सिंकों' में सेंध लगा सकती है। प्राकृतिक बलों को भटका सकती है। इधर वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड को तरल में तबदील करके विशाल टैंकरों, जलपोतों के जरिये गहरे समुन्दरों में पाइपों के जरिये, दफन करने के प्रयास किये जा रहे हैं, उधर समुन्दरों के विशाल वक्ष पर लौह चूर्णों के फुहारण का भी प्रस्ताव आया है ताकि फाइपोप्लैंक्टन एक पम्प की मानिन्द वायुमंडल से कार्बनडाइऑक्साइड की अतिरिक्त मात्रा चूस लें। लेकिन ऐसा करने से क्या यह समुद्री वनस्पति बेतहाशा नहीं बढ़ जायेगी ? क्या ऐसा करनेसे समुद्री खाद्य-कड़ी नहीं गड़बड़ायेगी ??

व्याखयाता, भौतिकी, हरियाणा शिक्षा सेवा II, 882/29, कमल कॉलोनी, रोहतक-124001 (हरियाणा)

जो हो ! इस दबी पड़ी कार्बनडाइऑक्साइड की थाह लेना जरूरी है।

विज्ञानी उस विध्वंसात्मक घटना को, उस हादसे को अभी भूले नहीं हैं जब, 1986 में कैमरून की नाइडॉस-झील ने अचानक कार्बनडाइऑक्साइड की विशाल मात्रा उगलना शुरू कर दिया था, किसी ज्वालामुखी विस्फोट, भू-स्खलन, या भू-कम्प से कम तबाही इस 'ग्रीन हाउस गैस, ने नहीं मचाई थी। जमीन पर पसरा कार्बन-डाइऑक्साइड का अदृश्य बादल 1700 लोगों को लील गया था। गैस लावे की तरह फूटी थी।

नये अध्ययन बतलाते हैं कि समुन्दर एक 'स्याही-सोख' की तरह मानव निर्मित कार्बन डाइऑक्साइड की इस अपार राशि का अल्पांश ही गहरे क्षेत्रों में जमा कर रहे हैं। बाकी कार्बन डाइऑक्साइड कहाँ अड्डा बनाये बैठी है, इसका कुछ अता-पता नहीं है ! ऐसे ही एक अध्ययन के अगुवा ऐसा मानते हैं (जिसके नतीजे विज्ञान-पत्र 'साइंस' में छपे हैं) : उत्तरी गोलार्द्ध की पादप (वनस्पति) या मृदा में ही कुछ ऐसी प्रक्रियायें चल रही हैं, जो जीवाश्म ईंधनों के जलने से पैदा होने वाले कार्बन व उसके उत्पाद कार्बन डाइऑक्साइड को जज्ब कर रही है। यह दीगर है कि ऐसी विशिष्ट वनस्पतियों व पादपों की शिनाख्त अभी हो नहीं सकी है। संदेह की सुई पीटों (पीट लैन्ड्स, कच्छी व दलदली प्रदेशों की तरफ उठ जरूर गई है। दलदली क्षेत्रों में ऐसी मृदा का साम्राज्य है जो अपने अन्दर अथाह ऑर्गैनिक कार्बन छिपाये है, शायद समुन्दरों से भी ज्यादा कार्बन पीटों में मौजूद है। वानस्पतिक पदार्थों के क्षय से, ही यह कार्बन पीट लैंडों में रच-बस गई है।

हालाँकि वसुन्धरा की पूरी-चादर का मात्र दस फीसदी ही है दलदली व कच्छी क्षेत्र (धरती की हरी चूनर को तो आदमी ने बेशर्मी से तार-तार कर दिया है), लेकिन सागरों के समूचे तन्त्र से कहीं ज्यादा कार्बन ये क्षेत्र दबाये पड़े हैं। वायुमंडलीय रसायन शोध इनकी टोह ले रही है। शोध का रुख उत्तरी गोलार्द्ध के इन विरल दलदली क्षेत्रों की ओर हो गया हैं। यह सम्भावना बनी हुई है कि इन पीटों से एक दिन अन्तर्निहित कार्बन का बड़े पैमाने पर रिसाव हो सकता है। आखिर हजारों-हजार सालों से यह कार्बन दबी पड़ी है। पिछले दशकों में जीवाश्म ईंधनों के तेजी से हुए सफाये ने इन क्षेत्रों को और रहस्यमय बना दिया है। कम से कम इनमें इतना कार्बन तो मौजूद है ही जितना हमारे वायुमंडल में आज मौजूद है।

(2) सागरीय उथल-पुथल में छिपा है, जलवायु का सुराग

लन्दन प्रेस सर्विस के अनुसार एक अज्ञात प्रक्रिया के तहत समुद्र की प्रमुख खाद्य कड़ी प्लैंक्टन की उपलब्धता तथा बहुतायत ब्रिटेन के आस-पास के समुन्दरों में खासी रद्दो बदल होती रहती है। अलावा इसके खाड़ी की धाराएँ अटलांटिक के दूसरी ओर अपना संचलन व चाल-ढाल बदलती रहती हैं। यदि इस अबूझ प्रक्रिया को समझ लिया जाये तब यह जान लेना भी मुमकिन हो जायेगा कि समुद्री जीवन किस प्रकार दुनियाभर की जलवायु को बदल सकता है।

पिछले 24 सालों में अटलांटिक महासागर के तमाम सर्वेक्षणों व अध्ययनों से जो आँकड़े जुटाये गये हैं उन सबका विश्लेषण करने के बाद ब्रिटेन की प्राकृतिक पर्यावरण समिति के विज्ञानियों ने उत्तरी अमेरिका के समुद्र तट से लगी खाड़ी की गर्म जल-धाराओं में होने वाले दोलन, व सामान्य चक्र व इनके प्रगमन में होने वाली दद्दोबदल व प्लैंक्टन की घटबढ़ में एक सशक्त सम्बन्ध की पुष्टि की है। आखिर धाराओं के वेग का इस पादप व जैव खाद्य कड़ी

से क्या रिश्ता है ? खासकर इस खाद्य कड़ी की उपलब्धता तब और भी बढ़ जाती है जब खाड़ी की वेगवान धाराएँ उत्तर की ओर ज्यादा बढ़ जाती है ।

समुद्र प्लैंक्टन समुद्री खाद्य शृंखला की प्रमुख लड़ी है, बुनियाद है । पृथ्वी नामक इस ग्रह पर जहाँ इत्तेफाक से जीवन है, मानव की तमाम गतिविधियों व क्रियाकलापों से जितनी भी ग्रीन हाउस गैस-कार्बनडाइऑक्साइड वायुमंडल में दाखिल होती है, यह वायस्पतिक व जैविक खाद्य कड़ी (प्लैंक्टन) उससे दस गुणा ज्यादा कार्बन डाइ-ऑक्साइड का पुनरसंसाधन कर डालती है ।

विज्ञानी फाइटोप्लैंक्टन (समुद्रीकाई व हरे पौधे व झंखाड़) की भूमिका को अभी ठीक से समझ नहीं पाये हैं । वैश्विक जलवायु के निर्धारण में व विनियमन में इस पादप—सागरीय वनस्पति—का कितना हाथ है यह भी अभी अनुमेय ही है, अन्वेषण का विषय है । इसकी भूमिका तय हो सकती है बशर्ते खाड़ी की वेगवती धाराओं व प्लैंक्टन के अन्तरसम्बन्ध को सही-सही समझ लिया जाये । इस अन्तरसम्बन्ध का खुलासा होने के बाद ही महासागरों में चलने वाले कार्बन-चक्र व अन्य प्राकृतिक बलों की टोह ले पाना मुमकिन हो सकेगा ।

प्राकृतिक पर्यावरण शोध समिति से जुड़ी प्ले-माउथ मरीन लैबोरटरी (दक्षिणी पश्चिमी इंग्लैण्ड) के मिस्टर **ऑनल्ड टेलर** कहते हैं कि यदि सागरीय जैविक पर्याविरण (पारिस्थितिक तन्त्रों) में एक अव्यवस्था व्याप्त होती तब इन तंत्रों के व्यवहार की प्रागुक्ति करना किसी भी प्रकार मुमकिन नहीं होता ।

लेकिन ये तन्त्र इतने संवेदनशील बन चुके हैं कि बलात् (बलपूर्वक) थोपे गये, प्रेरित जलवायु परिवर्तनों का ताड़कर ये सहज अनुक्रिया करते हैं । इसलिए भी इन जैव-पर्यावरणीय तन्त्रों के साथ छेड़छाड़, इनके प्राकृतिक-चक्र में खलल डालना ठीक नहीं है ।

सिद्धान्ततया सागरीय कार्बन-चक्र से जुड़े मुख्य जलवायु नियामकों, जलवायु विषयक नियन्त्रणों का पता लगा पाना असम्भव नहीं है । इन्हें समझकर जलवायु विषयक परिवर्तनों व आकस्मिक बदलाव की भविष्यवाणी (प्रागुक्ति) भी की जा सकती है ।

जो हो ! शोध-विज्ञानी उक्त अन्तरसम्बन्धों की आदिनांक कोई व्याख्या प्रस्तुत नहीं कर सके हैं । सिर्फ कयासभर लगाया जा सका है कि खाड़ी की धाराओं का रुख मोड़ने में पवन-शक्ति का तापमान से ज्यादा बड़ा हाथ है ।

अटलांटिक के एक ओर से दूसरी ओर तक जो पवनतन्त्र है वही खाड़ी की धाराओं को शक्ति प्रदान करता है, उन्हें गति प्रदान करता है । दक्षिणी वेस्ट इन्डीज के द्वीपों व केन्द्रीय अमेरिका के बीच के अटलांटिक महासागर को कैरिबियन सी कहा जाता है । कैरेबियन से लेकर उत्तर-पश्चिम-योरोप तक खाड़ी के गरम जल का रुख धाराओं में आने वाले बदलाव की बागडोर इसी पवनतन्त्र के हाथ में होती है । ब्रिटेन के गिर्द के समुन्दरों में ये धाराएँ, समुद्री सतह से कितनी नीचे मिलती हैं, परस्पर मेल मिलाप करती हैं, इसका नियन्त्रण भी यही पवनतन्त्र करता है । अन्ततः इन धाराओं का प्रभाव ही समुद्री प्लैंक्टन पर पड़ता है, इस जैव व पादप वनस्पति की बहुलता पर पड़ता है । जो हो, इस सागरीय उथल-पुथल की तह में जलवायु का सुराग है ।

(3) गुरुत्वीय तरंगें : मिथ या यथार्थ !

जिस भी पिंड में द्रव्यमान होता है, उसके गिर्द एक गुरुत्वीय क्षेत्र पैदा हो जाता है। यह गुरुत्वीय क्षेत्र किसी भी दूसरे पिंड पर (द्रव्यमानयुक्त पिंड) बल डालता हैं। फलतः परस्पर दोनों पिंड एक दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं।

इसी बात को यूँ भी कह सकते हैं कि एक कण (द्रव्यमानयुक्त) किसी दूसरे कण पर इसलिए आकर्षण का बल डालता है क्योंकि दोनों के बीच परस्पर एक संकल्पनात्मक क्षेत्रकण ग्रेविटॉन का आदान-प्रदान होता है। ग्रेविटॉन गुरुत्वीय क्षेत्र का क्वांटम है। सबसे छोटी इकाई है गुरुत्व की जो द्रव्यमान शून्य है, अविभाज्य है। यह विनिमय इतनी तेजी से होता है कि इसके प्रेक्षण नहीं लिये जा सकते इसीलिए ग्रेविटॉन को वरट्यूअल पार्टिकल (परिकल्पनात्मक कण) कहा जाता है। जो हो, यह गुरुत्व ही है जिसकी वजह है सृष्टि में व्याप्त हाइड्रोजन व धूल के बादल के संघनन से, गुरुत्वीय संकुचन के फलस्वरूप करोड़ सालों में सितारों का जन्म होता है। दूध गंगाएँ बनती हैं, दूध गंगाओं के परस्पर संघनन से, टक्कर से, भीमकाय झुण्ड बनते हैं। यह गुरुत्व ही है जो ग्रहों की कक्षा का निर्धारण करता है—जिन ग्रहों के चाँद हैं (उपग्रह हैं) उन्हें अपने गिर्द निर्धारित पथों में घुमाये रहता है। अनन्त दूरी तक जाता हैं गुरुत्व का प्रभाव। शून्य नर्तन मान वाला ग्रेविटॉन प्रकाश के निर्गतीय वेग से गतिमान रहता है।

आइन्स्टाइन महोदय ने अपने गुरुत्व सम्बन्धी सापेक्षवाद सिद्धान्त के अन्तर्गत यह प्रागुक्ति की थी—''नर्तनशील असमित द्रव्यमानों से गुरुत्वीय तरंगें निकलनी चाहिए। असमित नर्तनशील पिंड गुरुत्वीय तरंगें विकिरण करेंगीं। इन तरंगों में ऊर्जा व संवेग दोनों होंगे।

यह ठीक वैसे ही है जैसे कि विद्युत्-चुम्बकीय सिद्धान्त के अन्तर्गत यह अवधारणा प्रस्तुत की गई है—''त्वरित आवेशों से विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों का विकिरण अथवा उत्सर्जन होगा। तब क्या इसी तर्क को आगे बढ़ाते हुए यह कहा जा सकता है कि आवेश की तरह गुरुत्वाकर्षण का भी क्वान्टमीकरण हो जाता है। जैसे वस्तुओं पर आवेश एक इकाई (इलेक्ट्रॉनीय आवेश), दो इकाई या तीन इकाई ही पैदा होगा, आधे इलेक्ट्रॉन के आवेश के तुल्य आवेश पैदा नहीं होगा, ठीक वैसे ही गुरुत्वीय तरंगें भी पूर्णांक में पैदा होंगी। भिन्नीय गुरुत्वीय तरंगों का कोई अस्तित्व नहीं होगा।

क्या वास्तव में ग्रेविटॉन- फोटॉनों की मानिन्द फील्ड पार्टिकल हैं, और ऊर्जा की न्यूनतम, अखंडनीय इकाई के रूप में जिस प्रकार आवेशों या आवेशित पिंडों के बीच परस्पर फोटॉनों का आदान-प्रदान होता है ठीक वैसे ही गुरुत्व के क्वांटम के रूप में किन्हीं भी दो पिंडों (द्रव्यमानों या द्रव्यमान युक्त कणों के बीच) के बीच ग्रेविटॉनों का विनिमय होता है।

वास्तव में गुरुत्वीय तरंगें एक प्रकार का विक्षोभ हैं, डिस्टर्बेन्स हैं, जो प्रकाश के निर्गतीय वेग से ही आगे बढ़ती हैं। अन्तरिक्ष में इन तरंगों के मार्ग में जो भी द्रव्यमान युक्त पिंड पड़ता है उसमें एक आवर्ती त्वरण पैदा हो जाता है। यह मियादी त्वरण तरंग के गमन-पथ के लम्बवत् (अनुप्रस्थ दिशा में) पैदा होता है, लेकिन अत्यधिक क्षीण शक्ति वाली इन तरंगों की वास्तव में टोह लेना एक मुश्किल काम है। लेकिन जो कुछ इन तरंगों के बारे में कहा गया है, वह अपनी जगह सिद्धान्ततया सही है।

1977 में रडियो ज्योतिर्विज्ञानियों ने एक ऐसे जुड़वा न्यूट्रॉन तारा निकाय का पता लगाया जो परस्पर एक दूसरे की परिक्रमा कर रहे थे, मुक्त रूप से एक दूसरे की ओर गिर भी रहे थे। इससे यह निष्कर्ष निकाला गया कि यह तारा निकाय विकिरण के रूप में ऊर्जा को खोता जा रहा था।

गुरुत्वीय तरंगों की टोह लेना आसान काम नहीं रहा है। अमेरिकी भौतिकीविद् **जो.वेबर** ने गुरुत्वीय तरंगों की टोह लेने के प्रयास में एक तकरीबन दस मटरी टन वजन का अल्युमीनियम से बना सिलिन्डर एक डोरी से लटका दिया था। यह प्रयोग इस अवधारणा पर अवलम्बित था कि जब गुरुत्वीय तरंगें अचानक इस विशाल बेलन से टकरायेंगीं तब इससे चस्पा पिजा इलेक्ट्रिक किस्टलों पर एक दबाव या प्रतिबल ये तरंगें डालेंगीं फलस्वरूप एक वैद्युत् विभवान्तर अथवा वोल्टेज पैदा हो जायेगा।

कालान्तर में लगातार गुरुत्वीय तरंगों की टोह लेने वाले संसूचकों का परिष्कार किया गया है। अति परिष्कृत प्रयोग रचे गये हैं, इन विलक्षण तरंगों की टोह लेने के लिए। ऐसे ही एक अति परिष्कृत प्रयोग में शक्ति-शाली लेजर पुंज का इस्तेमाल साधारण प्रकाश के स्थान पर किया गया है। यह प्रयोग विश्व प्रसिद्ध **माइकल मोर्ले प्रयोग** की अनुकृति है जो सृष्टि में व्याप्त सर्वव्यापी ईथर की उपस्थिति का पता लगाने के लिए किया गया था। इस कल्पित माध्यम के सापेक्ष स्वयं पृथ्वी का वेग नापने का प्रयास किया गया था। ऐसे तमाम प्रयास असफल रहे। गुरुत्व सम्बन्धी कथित प्रयोग में दो पिंडों (द्रव्यमानों) के बीच लेजर पुंज के टकराकर लौटने का समय नोट किया गया था।

ऐसा मान लिया गया था कि जब एक गुरुत्वीय तरंग इन द्रव्यमानों से टकरायेगी तब लेजरपुंज का एक द्रव्यमान से टकराकर दूसरे तक लौटने का समय अन्तराल थोड़ा बदल जायेगा। पैन्डुलम की तरह झूलते दोनों द्रव्य-मानों के सिरों पर लेजरपुंज को लौटाने के लिए (परावर्तित करने के लिए) दर्पण जड़े थे।

संसूचक में दोनों द्रव्यमानों को एक दूसरे के अभिलम्बवत् रखा गया था। दोनों द्रव्यमानों के बीच खासा फासला (कई किलोमीटर का) रखा गया था। कहना न होगा कि इस प्रयोग का परिणाम भी **माइकल मोर्ले प्रयोग** की तरह ऋणात्मक ही निकला। अलावा इसके अब तक इंग्लैण्ड, फ्रांस, संयुक्त राज्य अमेरिका, इटली, आस्ट्रेलिया तथा जर्मनी आदि देशों में भी प्रयोग गुरुत्वीय तरंगों की टोह लेने के लिए किये गये हैं, उनमें इन तरंगों की कोई टोह नहीं ली जा सकी है। न्यूट्रीनो की तरह इनकी टोह लेना दुष्कर कार्य सिद्ध होता रहा है।

गुरुत्वीय क्षेत्र में प्रकाशन के वेग से गतिमान ये विक्षोभ (गुरुत्वीय तरंगें) संसूचकों की पकड़ से बचकर निकलती रही हैं।

गुरुत्वीय क्षेत्र में होने वाले सम्भावित परिवर्तन भी प्रकाश के निर्वातीय वेग से ही आगे बढ़ेंगे। यदि सूरज अपने विकास की अन्तिम अवस्था में अचानक पहुँचकर नष्ट हो जाये तब भी इस गुरुत्वीय बदलाव की सूचना पृथ्वी पर 8.3 मिनट बाद ही पहुँच सकेगी। इतना ही तो समय लगता है सूरज के प्रकाश को पृथ्वी तक पहुँचने में। गुरुत्वजन्य परिवर्तनों की टोह लेने में भी इतना ही समय लगेगा।

सूक्ष्म स्तर पर क्योंकि गुरुत्व एक सबसे कमजोर बल है (शक्तिशाली नाभिकीय बल या स्ट्रॉन्ग फोर्स, नाभिक के कणों को परस्पर संजोये रखने वाला बल परिमाण में गुरुत्वीय बल से दस हजार मिलियन मिलियन मिलियन मिलियन मिलियन मिलियन गुणा शक्तिशाली है (गुरुत्वीय तरंगें भी इसीलिए अति कमजोर शक्ति की हैं जिनकी टोह लेना आसान काम नहीं है) । सृष्टि के मनोरम पिंड जुड़वां तारा निकाय (बाइनरी न्यूट्रॉन-स्टार-सिस्टम या पल्सर्स) अन्तरिक्ष की कालकोठरियाँ या कृष्ण विवर (द ब्लैक होल्स), सुपरनोवा आदि इन तरंगों के सम्भावित स्रोत हो सकते हैं, जहाँ द्रव्य अपनी पहचान खोकर, पिंड अपनी सममिति खोकर आंदोलन व विक्षोभ त्वरण व दोलन के चरम पर पहुँच गये हैं । जो हो, गुरुत्वीय तरंगें वर्तमान कण व तरंग टोही संसूचकों एवं उपकरणों के लिए एक चुनौती है, जो इतिहास के झरोखों से हमें निहार रहीं हैं ।

●●

विज्ञान वक्तव्य

प्रिय पाठकगण !

दिसम्बर अंक आपके हाथों में है । यह अंक इस ओर भी संकेत करता है कि वर्ष 1991 का अवसान हो रहा है और नया वर्ष नई खुशियाँ लाने वाला है । किन्तु पर्यावरणविद् **श्री अशोक राय** की चेतावनियों की ओर जब ध्यान जाता है तो सर्दी हड्डियों में प्रवेश कर जाती है और शरीर में कपकपी होने लगती है ।

श्री राय ने 'अखिल भारतीय काँग्रेस कमीटी' के लिए एक रिपोर्ट संकलित किया है । श्री राय के अनुसार वर्ष 2005 तक जनसंख्या बढ़कर 1055 मिलियन हो जायेगी । इसका सीधा अर्थ यह हुआ कि इतने लोगों को भोजन मुहैया करने के लिए 40 प्रतिशत खाद्यानों की उपज बढ़ानी होगी । किन्तु फसलोत्पादन में वृद्धि पर्यावरण विनाश की नींव पर नहीं खड़ा कर सकते । भारत में जंगलों की दशा पहले ही शोचनीय है । आज स्थिति यह है कि जितने वना की सफाया हो रहा है मात्र उसका एक-चौथाई वन ही लगा या जा रहा है यानी अनुपात 4:1 का है, जबकि यह अनुपात 2:2 का होना चाहिए ।

यदि जलावन की लकड़ी की ही बात करें तो आज प्रतिवर्ष 120-130 मिलियन टन लकड़ी इस्तेमाल हो रही है और एक अनुमान के अनुसार 84 मिलियन टन की प्रतिवर्ष और आवश्यकता है । श्री राय के अनुसार इस शताब्दी के अन्त तक यह अनुपात बढ़कर 375 मिलियन टन और 125 मिलियन टन का हो जायेगा ।

1952 में कहाँ हमारा सपना था कि देश में 33 प्रतिशत वन होंगे और वास्तविकता यह है कि आज मात्र 9 प्रतिशत वन शेष हैं ।

इसलिए नये वर्ष की खुशियाँ मनायें और जरूर मनायें क्योंकि नया वर्ष पिछले दुःख-दर्द के समाप्त होने का एहसास कराता है, किन्तु इसी के साथ थोड़ा विचार इस बात पर भी करें कि बढ़ती जनसंख्या को कैसे नियंत्रित करें और किस प्रकार वनों का विस्तार हो ।

आपका

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा आयोजित अखिल भारतीय
विज्ञान लेख प्रतियोगिता 1991

व्हिटेकर पुरस्कार

दो सर्वश्रेष्ठ लेखों को पाँच-पाँच सौ रुपयों के दो पुरस्कार

शर्तें

(1) लेख विज्ञान के इतिहास से सम्बन्धित या किसी वैज्ञानिक की जीवनी पर होना चाहिए।
(2) केवल प्रकाशित लेखों पर ही विचार किया जायेगा।
(3) लेख किसी भी हिन्दी पत्रिका में छपा हो सकता है।
(4) प्रकाशन की अवधि वर्ष के जनवरी और दिसम्बर माह के बीच कभी भी हो सकती है।
(5) इस वर्ष पुरस्कार के लिए लेख जनवरी 1991 से दिसम्बर 1991 माह के बीच प्रकाशित हो।
(6) लेखक को साथ में इस आशय का आश्वासन देना होगा कि लेख मौलिक है।
(7) विज्ञान परिषद् के सम्बन्धित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकते।
(8) वर्ष 1991 के पुरस्कार के लिए लेख भेजने की अंतिम तिथि 15 मार्च 1992 है।

लेख निम्न पते पर भेजें—

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव
संपादक 'विज्ञान', विज्ञान परिषद्, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

उत्तर प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलिजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से

1. रचनायें टंकित रूप में अथवा सुलेख रूप में केवल कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।
2. रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की कोई व्यवस्था नहीं है, यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र यदि किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर भी विचार किया जा सकता है।
6. हमें चिंतनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है। कृपया छोटे निम्न-स्तरीय लेख हमें न भेजें।
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।

प्रकाशकों से

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से

मूल्य

आजीवन : 200 रु० व्यक्तिगत; 500 रु० संस्थागत
त्रिवार्षिक : 60 रु०
वार्षिक : 25 रु०
प्रति अंक : 2 रु० 50 पैसे

प्रेषक : विज्ञान परिषद्
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002